भोट - भारती ग्रन्थ माला [४]

प्रधान सम्पादक
भिक्षु समदोङ् रिन्पोछे
प्राचार्य

चौरासी सिद्धों का वृत्तान्त

आचार्य अभयदत्तश्री प्रणीत

གྲུབ་ཐོབ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་བཞིའི་ལོ་རྒྱུས།

སློབ་དཔོན་མི་འཇིགས་སྦྱིན་གྱིས་མཛད་པ།

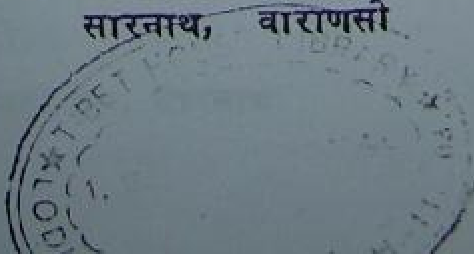


भोट विद्या संस्थानम्

हिन्दी अनुवादक एवं सम्पादक
आ० सेम्पा दोर्जे
उपाचार्य—मूलशास्त्र

केन्द्रीय उच्च तिब्बती - शिक्षा - संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द—२५२३ सन् १९७९



प्रकाशन
केन्द्रीय उच्च तिब्बती - शिक्षा - संस्थान
सारनाथ,
वाराणसी

प्रथम संस्करण – ५०० प्रति

मुद्रक—हिन्दी—
महावीर प्रेस, भेलूपुर,
वाराणसी.
भोट—तिब्बती प्रेस, सारनाथ.

चौरासी सिद्धों का वृत्तान्त

लोचावा का मंगलाचरण

सत् गुरुजनों को प्रणाम है, (मैं लोचावा स्मोन डुब शेरब)

मंगलाचरण

त्रैकालिक बुद्ध एवं गुरुपरम्परा, जो खेचर भूमि प्राप्त है, तथा साक्षात् गुरु परमसिद्धि प्राप्त अभय श्री के पद कमल में काय वाक् एवं प्रसाद मन से प्रणाम करता हूँ। (प्रणाम कर) लूहिपा आदि चौरासी सिद्धों के वृत्तान्त सम्यग् रूप से लिखेंगे।[१]

१. गुरु लूहिपा का वृत्तान्त

नाम—मछली की आंत खाते (हुए साधना करते) रहने से[२] (उनका) नाम लूहिपा पड़ा।[३]

जीवन वृत्तान्त—(किसी समय)[४] सिंहल द्वीप में एक राजा राज करता था, जिसका राज्य वैश्रवण (कुबेर के राज्य) के समान (सम्पन्न) था। राज भवन सब तरह के रत्न-मोती, सोना, चाँदी आदि से अलंकृत (सुशोभित) था।

उस राजा के तीन पुत्र थे। एक समय (राजा द्वारा) ज्योतिषियों से यह पूछा गया कि राजा के देहान्त हो जाने पर कैसे पुत्र को राज (भार) सौंपना अच्छा होगा? ज्योतिषियों ने ज्योतिष देख कर कहा कि मध्यम पुत्र को यदि राज्य दे दिया जाय तो राज्य बहुत सुदृढ रहेगा और प्रजा सुखी होगी, यह गुण उसमें है। तदनुसार उस राजा ने अपने मध्यम पुत्र को ही राज काज सौंप दिया और बड़े और छोटे दोनों भाई तथा जनता सब ने मिल कर उसे (मध्यम पुत्र को) राज्याभिषेक कराकर गद्दी पर आसीन किया। पर उनको राजपद की चाह नहीं थी और राज काज त्याग कर उन्होंने पलायन की चेष्टा की, तो उनके दोनों भाइयों और जनता ने उन्हें पकड़ कर सोने की जंजीर में डाल दिया (बाँध दिया)। उन्होंने अपने रक्षकों (पहरेदारों) को सोना-चाँदी आदि (रत्न) दे-दे कर (अपनी बात मनवाई) रात में सिले हुए वस्त्र पहने (वेश बदल दिया) और अपने को (दूर तक) पहुँचाने वाले लोगों को भी सोना आदि (रत्नों) से पुरस्कृत किया (और उनसे विदा ली)। राजपुत्र स्वयं-

---

१ यहाँ शास्त्रकार एवं अनुवादक के अलग नाम न होने के कारण इस वृत्तान्त को अभयदत्त श्री ने मौखिकरूप से कहा और उनके शिष्य भिक्षु स्मोन् शेस् रब्ने उसे उसी रूप में भोट भाषा में अनूदित कर दिया है।

२ मछली की आंत खाते रहने का वृत्तान्त बुस्तोन,-चक्रसंवर सामान्य शेस् रब् पृ० ३७, '६' पुट, तारानाथ के-छोब्युङ्, साक्या काबुम, न्य व्याख्या में समान रूप से मिलता है।

३ 'लूई' या 'लूहि' शब्द संस्कृत 'लोहित' शब्द से सम्बन्ध रखता है।

४ यह ओडियान के, राजा विमलचन्द्र के समकालीन थे, बुस्तोन—वही पृ० ३८

रामल[1] के देश रामेश्वर[2] चले गये। वहाँ राजमहल एवं रेशमी आसन त्याग कर मिट्टी के भीतर कृष्णसार (कृष्णसारंग) के (चमड़ा के) बिछौने बिछाकर सो गये। वह राज पुत्र बहुत सुशील एवं सुन्दर सुदर्शन थे, (जिसके कारण) लोग उन्हें खाना पीना आदि निरन्तर देने लगे।

तत्पश्चात् (वे) बुद्ध गया चले, तो वहाँ (एक) डाकिनी ने उन्हें अनुगृहीत किया और अववाद (महत्वपूर्ण तान्त्रिक उपदेशों के मर्म का अवबोध) दिया। तत्पश्चात् वह राज पुत्र रहने के लिए पाटलिपुत्र चले आये। वहाँ सब लोगों ने उन्हें भोजन-छाजन देना निरन्तर जारी रखा और वे दिये हुए अन्न खाते हुए श्मशान में सोते रहे। (एक दिन नगर में मेला लगा हुआ था) (राजपुत्र उस) मेले में गये और मदिराशाला में पहुँचे, तो मदिरा बेचने वाली प्रधान एक लौकिक डाकिनी थी और वह राजपुत्र को देख कर कहने लगी कि—इनके सभी चतुष्चक्र मलरहित हो चुके हैं, पर हृदय (चक्र) में मटर के बराबर जाति का विकल्प शुद्ध नहीं हो पाया (अभी विद्यमान) है—तत्पश्चात् उसने उस (योगी) राजपुत्र को एक मिट्टी के बर्तन में सड़े हुए कुछ खाद्य पदार्थ डाल कर दिए। राजपुत्र ने उसे फेंक दिया तो उस डाकिनी ने क्रुद्ध हो कर कहा कि तुमको अच्छा-बुरा खाने की विकल्पना बिना छोड़े धर्म कहाँ से आयेगा ? .उस बात को सुनने के बाद वह सोचने लगे कि) विकल्पना एवं निमित्त (बुद्धि) बोधि (प्राप्ति) के लिये एक (महान) विघ्न है, ऐसा जानकर सभी प्रकार के विकल्पों एवं निमित्तों को छोड़ दिया। मछुआ लोग गंगा से मछली मारने के बाद तट पर मछली की आँतों को फेंक दिया करते थे और राजपुत्र उसे खाते हुए बारह वर्षों तक वहीं साधना करते रहे। सब मछुआ औरतों ने देखा कि एक योगी उन लोगों द्वारा फेंके गये मछली की आँतों को उठाकर रोज खाते हैं, तो उन लोगों ने उन्हें लूहिपा (लूई) कहना आरम्भ कर दिया, उसी समय से उनका नाम लूहिपा पड़ गया और सर्वत्र उनके लिए 'लूहिपा' संज्ञा व्यवहृत हुई। इसी नाम के साथ उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई।

(इसका कुछ अंश दारिका पा एवं डिङ्गीपा के वृत्तान्त के साथ आयेगा)

सिद्ध लूहिपा का वृत्तान्त समाप्त[3]

---

१ भोट ग्रन्थ में 'रामल' का देश लिखा है, पर सम्भवतः यह 'रामल' नहीं अपितु 'राम' शब्द ही शुद्ध जान पड़ता। यथा राम ने लङ्का जाते समय एक मन्दिर बनवाया जिसका नाम 'रामेश्वर' है,

२ साधकों के शरीर में साधना करते समय के चार स्थानों (मूर्द्धा, ग्रीव, हृदयादि) में भाव्य चार चक्र। विस्तृत जानकारी के लिये नागार्जुन के पंचक्रम' एवं चोङ् खा पा की व्याख्याएँ देखिए।

३ पद्म० कर० के अनुसार सरहपा एवं शबरपा दोनों के शिष्य थे।—और ओडियान के थे। (पद्म०-इति० पृ० ७४)

दुजोम के अनुसार इनका जन्म स्थान 'धंपर' था। ओडियायन में जाकर वे भिक्षु बने और तीनों पिटकों के विशेषज्ञ बने। 'आर्यमञ्जुश्री नाम संगीति तन्त्र' की साधना से सिद्धि प्राप्त हुई। इनके चारनाम हैं—श्री भागवत् परमबोधि, लीलापा, या लीलावज्र भाणु सदृश, ना रूपी। दुजोम, निङ् मा० इति० पृ० ४३



१ लुहिपा

ये सिद्ध लुहिपा हैं। रंग के श्याम वर्ण के और शरीर से दुबले हैं। सामने मछली की आंतों का ढेर रखा हुआ है। ये उनमें से एक मछली उठाकर मुँह में डालकर खा रहे हैं। हलकी सी जटा रखे हुए हैं और उसकी शिखा बांधे हुए हैं। छाती में हलके बाल निकले हुए हैं।



२. लीलापा

ये राजा के वेश में सिंहासन पर बैठे हुए हैं। ये चारों ओर से अपनी रानियों एवं मंत्रियों से घिरे हुए हैं। सामने एक मन्त्री खड़ा है।

२. गुरु लीलापा का वृत्तान्त

दक्षिण भारत[२] के एक राजा अपने सिंहासन पर बैठे थे, उस समय अन्य प्रदेश से एक सुअभ्यस्त योगी उनके पास पहुँचे। राजा ने उन योगी से पूछा कि तुम्हारा सभी राज्यों में घूमते रहना बहुत कष्ट (दायक) है। (उत्तर में योगी ने कहा कि) मैं तो दुःखी नहीं हूँ, पर कष्ट तुम्हें है, क्योंकि तुम्हें अपना राज्य छूट जाने का भय, और प्रजा न खुश होने का भय है। मैं तो अग्नि में कूद जाऊँ तो भी नहीं जलूँगा, विष खालूँ तो भी नहीं मरूँगा, एवं बूढ़े होने तथा मरने का दुःख भी नहीं है क्योंकि मुझे रसायन का उपदेश है (अर्थात् मैं रसायन प्रयोग की विधि जानता हूँ)।

(इसे सुन कर) राजा (के मन में उनके प्रति बड़ी) श्रद्धा उत्पन्न हो गई और उन्होंने कहा—मैं आपके समान राज्य-राज्य घूम तो सकता नहीं, फिर भी अपने राज्य में आसन पर बैठ कर भावना (अभ्यास) तो कर सकता हूँ, अतः आप अपनी विधियों में से मुझे एक की देशना दीजिये। उस (योगी) ने उन्हें अनुमति दे दी और हेवज्र के अनुसार अभिषेक द्वारा मंडल में प्रवेश करा दिया और उसीका अववाद (दीक्षा) दे कर 'एकाग्र स्मृति' नामक समाधि का अभ्यास कराया। उस राजा ने अपने सिंहासन पर विशेष प्रकार के आसन, तकिया आदि सजाए और अपनी रानियों एवं मन्त्रियों के साथ सभी प्रकार के वाद्य-यन्त्रों से परिवृत हो कर भावना किया। यही कारण है कि उनका नाम लीलापा (अर्थात् नृत्य लीला आदि में लीन योगी) पड़ गया।

उनका असली अववाद (क्रिया विधि) अपने दाहिने हाथ के अंगूठे को आलम्बन बनाकर निर्विक्षिप्त रूप से भावना करना (समाधि लगाना) ही था।

जब उसमें निर्विकार रूप से अभ्यस्त हो गये तो उनके गुरु ने अंगूठे के अन्दर 'हेवज्र' के समस्त देव मण्डल की भावना करने का उपदेश दिया। उसमें भी निश्चित रूप से स्थित हो जाने की बात कही, तो 'उत्पत्ति' एव 'निष्पन्न'[१] के युगनद्ध (सहज रूप से) भावना का अभ्यास किया और तदनुसार सहज रूप से ज्ञान (प्रकाश) उदित होने लगा और उन्हें महामुद्रा (परम) सिद्धि प्राप्त हुई। वह अभिज्ञादि अनेक प्रकार के गुणों से सम्पन्न हो गये।

इस प्रकार गुरु के (मार्मिक) उपदेश स्वयं अपने उद्यम और साथ ही पूर्व कर्म अवशेष इन तीनों का यदि योग हो जाता है, तो भोग विलास के बिना त्याग किये भी व्यक्ति मुक्त हो जाता है। उन (परम सिद्ध पुरुष) ने (सिद्धि प्राप्ति के बाद) अपरमित जगत् कल्याण किया और 'लीलापा' नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये। अन्त में खेचर (लोक में) चले गये।

गुरु लीलापा का वृत्तान्त समाप्त

---

१ 'उत्पत्ति' एवं निष्पन्न क्रम' तन्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं, विस्तृत जानकारी के लिये, चोङ् खा पा के 'ङग्-रिम् छेन् मो' देखिये। चोङ् खा पा ग्रन्थ संग्रह ४, '५०' पुट में।

३. गुरु विरूपा का वृत्तान्त

गुरु विरूपा का जन्म पूर्वी भारत (त्रिपुरा) जो राजा देवफल (देवपाल) का प्रदेश था, में हुआ[१]। उस समय दक्षिण में सोमपुरी नामक एक महाविहार था। उस धर्मपीठ में एक हजार (भिक्षुओं का) विशाल संघ था। उसमें विरूपा (भी प्रविष्ट हो गये और भिक्षु बने)। यद्यपि विरूपा भिक्षु थे, फिर भी उन्होंने अभिषेक लेकर बारह वर्ष तक वज्रवाराही का जप एक लाख का दो बार किया। पर उस से उन्हें अच्छे स्वप्न तक नहीं आये। (सिद्धि की बात दूर रही) इस से मन-विक्षुब्ध हो कर उन्होंने अपना 'माला शौचालय में फेंक दिया और यथेच्छा (दिन) चर्या में लग गये। उसी रात (नित्यकर्म) पूजा के समय अपनी माला का ख्याल आया, तो डाकिनी (वज्रवाराही) ने आकर उन्हें अपनी माला हाथ में दे दी और कहा कि कुलपुत्र! तुम दुःखी न हो, मैं तुम्हें अधिष्ठित कराती हूँ, और सभी प्रकार के विकल्प एवं निमित्तों का परित्याग कर ही साधना करो।'

'प्रकृति में स्थित चित्त ही वज्र वाराही ;
अपने पास होते हुए भी अन्य से अपेक्षा करता।
यह अत्यन्त विज्ञ बालक का स्वभाव है ;
चित्त विद् पुरुष विकल्पों से अस्पृष्ट हो कर,
जो सन्तोष के साथ साधना करता है, वह उत्तम है।'

तत्पश्चात् पुनः बारह वर्ष तक वही साधना करते रहे, महामुद्रा परम सिद्धि प्राप्त हुई।

उसके बाद नौकर मांस एवं मदिरा खरीद कर खिलाने लगा और विहार में स्थित कबूतरों को मार कर उन्होंने खाना आरम्भ कर दिया। कपोत (दिनों दिन कम होते गये और) समाप्त होने को आए तो वहाँ के संघ ने उनसे पूछा कि हमारे पूज्य लोग (कबूतर) किसने खाये? विरूपा ने कहा कि हम लोग नहीं खाये (शंका होने पर) सभी लोगों के कमरे देखकर विरूपा के कमरे में देखने गये, तो वहाँ विरूपा मदिरा पीते हुए कबूतर का मांस खा रहे थे। यह लोगों ने 'खिड़की' से देख लिया।[२]

---

१ विरूपा जाति के क्षत्रिय (राज कुमार) थे। उन के भिक्षु-दीक्षा के गुरु-का नाम 'जितदेव' था। भिक्षु नाम 'श्रीधर्मपाल' था। ये वसुबन्धु के भी शिष्य थे। ये बहुत दिन तक नालन्दा में भी रहे। ये विज्ञानवादी दार्शनिक थे। [पद्म० इति० पृ० ६, B० D० १७१]

२ पद्म के अनुसार लोगों ने विरूपा को पन्द्रह देवकन्याओं से परिवृत और मदिरा पीते एवं मास खाते देखा। तत्काल संघ ने घण्टी बजा कर संघ-सभा बुलाई और संघ विधान के अनुसार विरूपा को संघ से बाहर किया और कहा कि तुम विरूप आचरण के हो। उन्होंने स्वयं भी अपनो विरूपता को स्वीकार किया। उनका नाम 'विरूपा' इसी से पड़ा। और वहाँ से वह बाहर चले गये (द्रष्टव्य पद्म० इति पृ० ८७)

संघ ने घंटी बजाकर सभा बुलाई और सभा के निर्णयानुसार उन्हें (विरूपा को) अपने स्थान से बाहर कर दिया। विरूपा ने भी अपने चीवर पात्र (बुद्ध की) मूर्ति के सामने रखकर प्रणाम किया और दरवाजे[१] से बाहर चले गए।

विहार के समीप एक झील थी (उसके तट पहुंचने पर) एक भिक्षु ने (विरूपा से पूछा कि आप किस रास्ते से जा रहे हैं? (उन्होंने उत्तर दिया कि) मुझे आप लोगों ने निकाल ही दिया तो अच्छे रास्ते का भरोसा क्या है? यह कह कर उन्होंने उस झील के पानी के ऊपर कमल की पत्तियों पर पैर रखते हुए विना पानी में डूबे कमल तोड़े और बुद्ध की पूजा करके पार चले गये।

सोमपुरी के सभी लोग पश्चात्ताप करते हुए उनके चरणों में प्रणाम करते हुए कहने लगे कि आपने 'कबूतर' क्यों खाये? विरूपा ने कहा कि—सब है, मैंने नहीं मारा—उनके सेवक कुछ कबूतरों के पंखों के टुकड़े ले आये। आचार्य (विरूपा) ने एक चुटकी बजाई तो (सभी कबूतर जितना खाये थे उनके) पंखों के (अवशेष) टुकड़े सब कबूतर ही बन कर पहले की अपेक्षा कुछ अधिक स्वस्थ एवं ताजे हो कर उड़ गये। यह दृश्य सब लोगों ने देखा।

विरूपा भिक्षु वेश छोड़ कर योगी के वेश में ही (अपनी) चर्या करते रहे। गंगा के तट पर जाकर उन्होंने गंगा की देवी से भोजन मांगा। नहीं मिलने पर वे क्रुद्ध हो कर पानी की धारा पूर्ण रूप से विच्छिन्न कर पार चले गये। तत्पश्चात् 'कनसत'[२] नगर में मदिराशाला में जा कर उन्होंने मदिरा खरीदी। मदिरा बेचने वाली ने एक प्याला मदिरा एवं एक तश्तरी भात दिया, तो वे उसे लेते रहे (खाते रहे)। पर ढाई दिन तक सूर्य अस्त नहीं हो पाया। तत्कालीन राजा ने (उस घटना को देख कर) आश्चर्य चकित हो कर यह किसका चमत्कार है, यह घोषणा कर डाली। सूर्य देव ने राजा को स्वप्न में अपना रूप दिखला कर कहा कि एक योगी ने मुझे मदिरा बेचने वाली के यहां रेहन के रूप में रख दिया है। राजा एवं प्रजा सब लोगों ने उस (योगी) की मदिरा का दाम (हिसाब) लगाया तो कोटि तक हो गया और सब अदा करने पर विरूपा वहीं अन्तर्ध्यान हो गये।

तत्पश्चात् वह 'इन्द्र'[३]नामक तैर्थिकों के स्थान पर पहुँचे[४]। उस स्थान में महादेव की एक बहुत बड़ी मूर्त्ति थी[५] जिसकी ऊंचाई इक्यासी हाथ थी, लोगों ने विरूपा को

---

१ कहीं दिवार से विना टकराए जाने की भी....।

२ पद्म० के अनुसार इस स्थान नाम 'घकिनित' है, जो 'विमोसार' के समीप है (दोनों स्थान इस समय अज्ञात है)।

३ सम्भवतः यह 'इन्द्र' शब्द स्नान के लिये नहीं अपितु महादेव के लिङ्ग के लिये प्रयुक्त है।

४ उस स्थान का नाम 'चपति था, वहाँ के तीर्थ केन्द्र के रूप में 'भीमहार' नामक एक लिङ्ग था, जिसकी स्थापना महाभारत के वीर भीमसेन द्वारा मानी जाती है। (पद्म० इति, पृ० ८८)

५ मूर्ति की जगह पद्म के इति० में लिङ्ग का उल्लेख है।

उसे प्रणाम करने को कहा। विरूपा ने कहा कि मैं बड़ा भाई हूँ, बड़े भाई द्वारा छोटे भाई को प्रणाम करने की प्रथा नहीं है। वहाँ के राजा आदि सब लोगों ने कहा कि फिर तुम को (हम लोग यहीं) मार डालेंगे।'

आचार्य (विरूपा) ने कहा कि–मैं यदि इस को प्रणाम कर लूं तो पाप लगेगा। इसलिये मैंने इसे प्रणाम नहीं करने को कहा है।

राजा ने कहा कि—उस पाप का प्रायश्चित्त मुझ से कर लो।

आचार्य ने (प्रणाम करने के लिए) अंजलि बद्ध किया, तो महादेव की मूर्ति दो टुकड़े में विभक्त हो गयी। आकाश से यह आवाज आयी कि—'आचार्य ! मैंने तो जैसी प्रतिज्ञा की थी, वैसा ही मानूंगा।' (आचार्य ने कहा कि) शपथ लो ? शपथ लिया, तो (मूर्ति के दोनों टुकड़े आपस में जुड़ गये। महादेव की मूर्ति के लिये प्रयुक्त सभी पूज्य सामग्री आचार्य को अर्पित कर दिया। वह सब अन्य बौद्धों की (स्थानीय संघ के) जीविका हो गई, जो कहा जाता है कि वह अभी तक (आचार्य अभयदत्त श्री के समय तक) प्रचलित है।

तत्पश्चात् आचार्य पूर्वी भारत-स्थित देवीकोट नामक स्थान में पहुँचे। उस स्थान के सभी लोग डाकिनी (चुडैल) बन चुके थे। एक डाकिनी रास्ते में रह कर आने वाले सभी लोगों को डाकिनी-मन्त्र फूँक कर छोड़ती थी, यह वहां की एक प्रथा सी बन गई थी।

जब आचार्य देवीकोट पहुँचे, तो नगर के रास्ते में उस मन्त्र फूँकने वाली डाकिनी के आने से पहले ही जा कर एक विहार (जो नगर के पास ही में था) में सोए बैठे। तत्पश्चात् एक ब्राह्मण पुत्र (उस रास्ते से) आ रहा था, उसे (उस मार्ग-डाकिनी ने) डाकिनी मन्त्र फूँक कर ही जाने दिया।

(नगर पहुँचने पर) उस को (ब्राह्मण को) भोजन सामग्री तो मिल गई, पर सोने की जगह नहीं मिली। (घूमते हुए) उसकी एक बौद्ध से भेंट हुई, उस व्यक्ति ने कहा कि यहाँ के सब नागरिक डाकिनी बन गए हैं, यहाँ कोई मनुष्य नहीं मिलेगा। डाकिनियाँ तुम्हें कुछ बाधा कर सकती हैं। अतः तुम उस पार के विहार में जा कर ठहरो। वह (यात्री ब्राह्मण) उस विहार में गया तो 'विरूपा' से भेंट हुई और आचार्य ने उसे (डाकिनी मन्त्र से परिभूत देख कर पुनः अपने) मन्त्र से अधिष्ठित कर (सुरक्षित कर) दिया। जब रात में सभी डाकिनियाँ एकत्र होकर एक दूसरे से पूजा सामग्री के बारे में प्रश्न कर रही थीं, तो सब लोगों ने यही कहा कि 'आज हमें सभी प्रकार का मांस (मदिरा) मिल गया, पर 'महामांस' नहीं मिल पाया। उनमें से एक ने कहा कि—मुझे दो महामांस (विरूपा और एक ब्राह्मण) मिले हैं।''

(प्रधान डाकिनी ने) उसे ले आने के लिए कहा। वह (अपनी सहेलियों सहित) उसको लेने गई, तो (विरूपा के मन्त्र प्रभाव से) बहुत प्रयत्न करने पर भी उस (ब्राह्मण) के पास नहीं जा सकी। बार-बार जा कर प्रयत्न किया तो एक बार

विरूपा एक बड़े लकड़ी के खण्ड पर बैठे मिले। उन लोगों ने उसे लकड़ीखण्ड सहित उठा कर उन्हें सभा में ला रखा। वहाँ पहुँचने पर सभी डाकिनियाँ उनकी पूजा वन्दना करने लगीं। विरूपा ने उन लोगों के सभी (मांस एवं) मदिरा को (खा) पी लिया (और समाप्त कर दिया)। डाकिनियों ने उन्हें मारने के अभिप्राय से हास-कुतूहल मचाना[१] आरम्भ किया, तो आचार्य ने भी 'द्वादश महाक्रोध परिहास'[२] हँस दिया, जिससे सभी डाकिनियाँ बेहोश होकर गिर पड़ीं। (इस प्रकार) सभी डाकिनी (वश में कर के) प्रतिज्ञ-बद्ध (शपथ से परिबद्ध) कर दी गई; उन्हें आज्ञा हुई कि—

'जो त्रिशरण में जाता हो, मेरे प्रति श्रद्धा रखता हो, उन्हें किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाना। जो लोग (त्रिरत्न के) शरणगत न हों, चित्तोत्पाद नहीं करते हों, उन लोगों के शरीर से बिना किसी प्रकार के बाधा (विघ्न) पहुँचाये एक अंजलि खून पी सकती हो। यदि कोई भी अपनी प्रतिज्ञा से विमुख (अपनी शपथ से विमुख) हो जाय, तो यह चक्र उसका सिर काटे (कह कर एक चक्र वहाँ स्थापित किया) और उत्तरी (प्रधान) यक्ष[३] (राज) उसके खून पीये (कह कर एक यक्षराज को अधिकृत किया)। उस यक्ष एवं चक्र की छाया आज भी (वीरप्रभस्वर एवं आचार्य अभयदत्त श्री के समय में भी) उस जगह (पूर्व देवीकोट)[४] के आकाश में विद्यमान है।

(इस प्रकार वहाँ की सभी डाकिनियों), रक्षकों (धर्मपाल) के परिवार निबद्ध कर (परिवार में सम्मिलित करके) शपथ में प्रतिबद्ध किये और फिर आचार्य वहाँ से अन्यत्र चले गये।

पुनः देवीकोट लौटते समय रास्ते में महादेव और उमादेवी दोनों ने साढ़े चार लाख को संख्या वाले नगर का निर्माण (चमत्कार द्वारा) करके उसमें विरूपा का आतिथ्य ग्रहण किया और त्रयस्त्रिंशत् आदि सभी देवस्थानों से लाये गये त्रिविद्या (खाने के पदार्थ) आदि द्वारा विस्तृत पूजा की।

---

१ यह 'हास' कौतूहल या परिहास-गर्जन (भीषण ध्वनि) से अभिप्रेत सामान्य ध्वनि नहीं थी। यह गर्जन है, जो डाकिनियां किसी अन्य जीव या व्यक्ति को परिभूत करने के लिये शक्ति के रूप में प्रयोग करती हैं।

२ यह बारह प्रकार के 'परिहास' तन्त्र शास्त्र के विधानानुसार एक विशेष प्रकार के परिहास हैं—ह-ह, हि-हि, हु-हु आदि। विशेष प्रकार की सिद्धि प्राप्ति के बाद ही इस परिहास की शक्ति का लाभ होता है। विशेष जानकारी के लिए चक्रसंवर तन्त्र की व्याख्या (तनग्युर संग्रह भोट भाषा)

३ आकाश में विचरण करने वाले उत्तर दिशा के यक्षराज।

४ कहीं कहीं—देवीकोटि, देवी कुट, देवी कोट भी लिखा हुआ है। यह स्थान पूर्व-भारत वारेन्द्र क्षेत्र, ग्रोमो (मडोड्) नामक जगह के दक्षिणी भाग में स्थित 'पञ्चप' नामक नगर से चार कोस की दूरी पर स्थित है। यह देवी का स्थान एवं सिद्ध पीठ है ('श्री चक्रसंवर तन्त्र की सामान्यार्थ वृत्ति' (बस्तोन–पृ० २८, 'छ' पुट ॥ B.N.6)

विरूपा का दोहा—

सोमपुरी महाविहार में, परिव्राजक-उपसम्पदा-विनयशील का सम्यक् पालन किया।

पूर्व कर्मवश नैर्माणिक (व्यक्ति द्वारा), अभिषेक-अधिष्ठित अपवाद का सम्प्रदान हुआ (सम्यक रूप से मिला)।

विकल्प द्वारा बारह वर्ष तक साधना की, तो स्वप्न तक न देखा;
थके हुए मन से क्रुद्ध होकर माला का त्याग किया, ततः डाकिनी की अपनी वाणी से अनुमति पाई (आशीर्वाद)।

इसी से प्रत्यय (कारण) (अपने) धातु (आन्तरिक सामर्थ्य) की परीक्षा हुई।
संसार का लक्ष्य (स्वरूप) से सम्यक्-अवगत हुआ, निर्विकल्प चर्या का मैंने आचरण किया।

(मुझे) महासाङ्घिक संघों के द्वारा भी, संभ्रान्त ज्ञान के कारण स्थान-च्युत किया गया।

उन सभी लोगों की विप्रतिपत्ति परिहार के हेतु, जल पर बिना निमग्न हुए ध्यान लगाया;
गंगा विपरीत दिशा में उलट कर, विविध (भोजन) खाया;
सूर्य धरोहर (न्याय) (के रूप) में रखकर, (मदिरादि) भोगे।
तैर्थिक देव प्रतिष्ठान भग्न कर अभिमान तोड़ा; देवीकोट में डाकिनियों का दमन किया।

महाभैरव ने गुणाभिव्यक्त कर नगर निर्माण किया, और मेरी पूजा की।
इतनी चर्याएँ यदि मैंने नहीं की होतीं तो सनिमित्त धर्म के[1] प्रति कौन झुकता ?

ऐसा कह कर वे सात सौ वर्ष बाद खेचर (लोक) चले गये।

गुरू विरुपा का वृतान्त समाप्त

---

१ 'सनिमित्त धर्म' = निमित्त से संयुक्त धर्म को 'सनिमित्त धर्म' कहा जाता है। अर्थात् परिकल्पित या विकल्पना की प्रतीति के निमित्त या प्रधान कारण ही यहां निमित्त शब्द अभिप्रेत है। यही लौकिक सहज बुद्धि का प्रवृत्ति-विषय भी है। यही 'प्रतीत्य-समुत्पाद' का व्यावहारिक पक्ष एवं सांवृत्तिक स्वरूप भी है। इसी के आधार पर कर्म-फल, मार्ग-फल आदि की अत्यन्त सूक्ष्म व्यवस्था की जाती है। यही 'सनिमित्त धर्म' का सारतत्त्व है।

(दोहावृत्ति० पृ० २०१-१९, तनग्युर 'लू' पुट। जापान संस्करण—Vol-870 (डुल थवस् कुन० तु-पृ० १३७-२३२, Vol-14)



३. विरूपा

विरूपा सिर में पुष्प माला सजाये हुए है। अन्य कोई अलङ्कार या आभूषण नहीं है। दाहिना हाथ तर्जनी मुद्रा में है और बाँयें हाथ में कृष्णसार मृग के सींग है।



४. डोम्बिपा

डोम्बिपा हड्डी-निर्मित अलङ्कारों, जिनकी संख्या छः मानी जाती है, से विभूषित है। दाहिने हाथ में विषैले सर्प का चाबुक है। बायें हाथ में नर कपाल है। पीछे सर्प का फन लहरा रहा है। बायीं ओर से उनकी पत्नी उन्हें आलिङ्गन कर रही है दोनों एक साथ सद्यःप्रसूता व्याघ्री पर सवार हैं।

४. गुरु डोम्बिका का वृत्तान्त

गुरुडोम्बिपा जाति के क्षत्रिय थे। वे मगध के रहने वाले थे। उनकी सिद्धि (इष्टदेव) हेवज्र से प्राप्त हुई।

यह गुरु (कृष्ण) चर्यापा द्वारा अभिषिक्त कर अववाद (उपदेश दीक्षा) दिये[1] गये और तदनुसार उन्होंने अनुष्ठान किया। अपनी प्रजाओं के प्रति एकमात्र पुत्र के समान (प्यार स्नेह के साथ) सोचने लगे। सभी लोग समान रूप से यह कहने लगे कि (हमारे) महाराज ने धर्म दीक्षा ली है, यह तो नहीं सुना, पर स्वभावतः प्रजा के प्रति (मैत्री भाव) रखने वाला, यह राजा एक धार्मिक ही प्रतीत होता है।

उस समय राजा ने अपने मन्त्री से कहा कि 'हमारे इस देश में चोर और भय दिखा कर सभी लोगों से लूट मार कर धन प्राप्त करने वाले भरे हुए हैं और अपना पुण्य कर्म (शक्ति) भी बहुत मन्द है। गरीबी बहुत है, इन सभी प्रकार के भयों और दरिद्रता के त्राण हेतु, उस काष्ट घण्टी (लकड़ी की घण्टी) को बजा कर वहाँ के बड़े वृक्ष में बाँध आओ। (जहाँ कहीं) बाधा एवं दरिद्रता दिखलाई पड़े, तो उस घण्टी को बजाओ। अन्यथा उसे न बजाओ।

जैसे राजा ने कहा, मन्त्री ने भी वही काम किया, और मगध में दरिद्रता एवं सभी प्रकार के भय समाप्त कर दिये।

किसी समय, उस राजा के राज्य में कुछ नीच जाति की गाना गाने वाली एक मण्डली पहुँची। राजा के लिये गाना बजाना आदि का आयोजन किया गया। उस गायक की सुपुत्री जो बारह वर्ष की थी, लौकिक धर्मों से अस्पृष्ट मनोहर बहुत सुन्दर चेहरे, अच्छे रंग, रूप, एवं पद्मिनी के सभी गुणों से सुसम्पन्न थी। राजा ने उस हीन जाति के गायक से कहा—

अपनी यह लड़की हमें दे दो।

उस गायक ने कहा—आप मगध के राजा आठ लाख नगरों के अधिपति हैं। निर्बाध राजसम्पत्ति वाले महान् राजा हैं। हम जाति के हीन, जन समुदाय से पद-दलित त्यागे हुए हैं। अतः हम आपके इस तरह की आज्ञा के योग्य नहीं हैं।

ऐसा निवेदन करने पर राजा ने जोर देकर उसे समझाया और लड़की के शरीर के वजन के बराबर सोना उसकी माता-पिता को प्रदान कर उसे राजा ने ले लिया।

बारह वर्षों तक उसे अपनी कर्म-मुद्रा के रूप में सेवन किया, तो किसी को पता नहीं लगा। पर बारह वर्ष के बाद लोगों को पता लगा तो 'मगध' वालों ने सर्वत्र यह घोषित कर दिया कि राजा ने एक डोमिनी (डोम की लड़की) ग्रहण की है। यह सुनकर, राजा अपने राज पुत्र और मन्त्री आदि को राज्य सौंप कर उस नीच

---

१ लामा तारानाथ के अनुसार यह महासिद्ध नड़पा (नारोपा) के शिष्य थे। नड़पा के साक्षात् शिष्य श्रीवर डोम्बिपा' कहे गये हैं—(भा० इ० पृ० २४५, अध्या ३३)

लड़की के साथ वन चले गये और वन में ही साधना करते बारह वर्ष बिताए ।

राजपुत्र एवं मन्त्रियों द्वारा राज-काज अच्छी तरह नहीं चला पाने के कारण देश नष्ट होता गया। सब लोगों ने मन्त्रणा करके यह तय किया कि पहले के राजा को ही खोज कर राज करने दिया जाय। कुछ लोगों को उसे खोजने भेजा भी गया। लोग जाकर वहाँ पहुँच गये, जहाँ राजा उस लड़की के साथ साधना में लीन थे, और लोगों ने देखा कि—राजा एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं, लड़की पानी लेने जा रही थी। उसने (एक झील के पास जा कर) झील के ऊपर कमल के पत्तों पर पैर रखते हुए बिना पानी में डूबे (झील के बीच तक जा कर) झील के पन्द्रह हाथ नीचे की सतह से पानी भर कर राजा को पिलाया। इस दृश्य को देख कर सब लोग आश्चर्य-चकित हो गये और नगर में लौट कर उन्होंने सब वृत्तांत लोगों को सुनाया।

उसके बाद सब नगर के लोगों ने राजपुत्र मन्त्री सहित वहाँ जा कर उनसे राज भवन लौट आने की प्रार्थना की। (प्रार्थना स्वीकार हुई) एक दिन दम्पति चीता पर सवार होकर विषैले सर्पों का चाबुक हाथ में लटकाए नगर पहुंचे। सब नगरवासी अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक उन्होंने देखते रहे; निवेदन किया कि आप यदि राज्य ग्रहण करें तो बहुत सुचारुरूप से गृहीत हो सकते हैं, अतः आप वैसा करें।

(उस योगी के रूप में) राजा ने उत्तर दिया कि—मैं तो शूद्र जाति का हूं, राजकार्य करने योग्य कहाँ रह गया। फिर भी मर जाने के बाद उच्च नीच जाति की कल्पना का विच्छेद हो जाता है। अतः (तुम लोग) मुझे अग्नि में जला दो, उसके बाद जब जन्म होगा, फिर राज कार्य करूँगा।

(तदनुसार)—नागरिकों ने गोशीर्ष (नामक) चन्दन की लकड़ी (भारी मात्रा में एकत्र कर) बीच में उन्हें सपत्नीक रख कर जला दिया। ईंधन अधिक हो जाने से सात दिन तक आग जलती रही और बुझी नहीं। (अग्नि शान्त हो जाने के बाद जब) लोगों ने देखा, तो (एक बहुत बड़े) कमल (सदण्ड विकसित पुष्प) के अन्दर दम्पति हेवज्र (देव) के रूप में सजल (पुष्प के समान) दिखलाई पड़े।

मगध नगर के सभी लोगों को (इसे देख कर उनके प्रति बड़ी) श्रद्धा हो गई और वे 'डोम्बिपा' के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

राजा (जो अग्नि में जलाने के बाद बचे रहे) मन्त्री आदि सब लोगों से बोले—

'तुम सब लोग यह मेरी तरह (साधना चमत्कार आदि) कर सकोगे तो मैं राज्य करूँगा, अन्यथा नहीं कर सकूँगा।

लोग आश्चर्य चकित होकर बोले—'इस प्रकार (हम लोगों में से) कौन करता है' ? यह कह कर वे बैठ गये।

पुनः राजा ने कहा कि—राजसत्ता बहुत ही लचीली एवं दोषों से भरी हुई है। मैं तो धार्मिक राजसत्ता (ही चला) सकूँगा। यह कह कर वे वहीं से जगत् कल्याण के लिये 'खेचर' लोक को चले गये।

गुरु डोम्बिपा का वृत्तान्त समाप्त

८. गुरु शबरपा का वृत्तान्त

शबरपा-मन्त्र विक्रम[२] नामक पर्वत में श्री शबरपी (शबरपा) नामक एक (शिकारी) रहता था।[3] उसका काम अनेक विध प्राणियों को मार कर उनका माँस खाना (जीविका चलाना) और सब समय जीविका के लिये प्राणि-बध एवं अनेक प्रकार की हिंसा आदि पाप कर्म करना था। आर्य लोकेश्वर (बोधिसत्व) ने उसे इस प्रकार के कार्य करते हुए) देखा तो (उनके मन में उस शिकारी के प्रति अगाध) करुणा उत्पन्न हो गई।

(आर्य ने) उस (शिकारी) की (प्रचण्ड मनोवृत्ति के) दमन के हेतु श्री शबरपा के ही समान् एक शिकारी का निर्माण किया (चमत्कार शक्ति द्वारा) जो उस (असली शबरपा) के पास जा मिला। श्री शबरपा ने पूछा कि तुम कौन हो, (नैर्माणिक) शबरपा ने उत्तर दिया कि—मैं भी शबरपा हूं।

शबरपा ने पूछा कि तुम्हारा देश कहाँ है ?

नैर्माणिक शबरपा ने उत्तर दिया कि—बहुत दूर प्रदेश में है।

शबरपा ने कहा कि—तुम एक शर (बाण) द्वारा कितना हरिन मार सकते हो ?

नैर्माणिक शबरपा ने उत्तर दिया—तीन सौ मार सकता हूँ।

शबरपा ने कहा कि—उस प्रकार की (धनुष विद्या और बाण चलाना मुझको भी सिखाओ।

दूसरे दिन (बाण सिखाने के हेतु) श्री शबरपा उस (नैर्माणिक) शबरपा को ले कर एक बड़े मैदान में पहुंचे। वहाँ (नैर्माणिक शबरपा ने पहले से) पाँच सौ हरिन बना कर छोड़ रखा था। जब शबरपा ने उन्हें देखा तो (अपने मित्र) उस नैर्माणिक शबरपा से पूछा कि—

तुम्हारे शर द्वारा कितना हरिन मरेगा ?

नैर्माणिक शबरपा ने उत्तर दिया कि—सभी पाँच सौ हरिन मर सकते हैं।

---

१ कुछ लोग 'शबरपा' और 'सरहपा' को एक ही व्यक्ति मानते हैं, पर ये, दोनों अलग अलग व्यक्ति थे। 'चतुराशीति सिद्ध गीतिका क्रम' में भी इन दोनों का अलग स्थान है। गुरु गयाधर के चौरासी सिद्धों की 'स्तुति' में भी इन दोनों के अलग-अलग नाम एवं स्तुतियाँ हैं, (तिब्बती-तनग्युर) बुस्तोन ने भी इन दोनों को एक मानना गलत बतलाया है—चक्रसंवर तन्त्र का सामान्यार्थ भाष्य—पृ० ३६-३७, 'छ' पुट। (बुस्तोन ग्रन्थ संग्रह Vol. N. 6)

२ 'मंन्त्र विक्रम' शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। बुस्तोन ने इस जगह का नामार्थ 'मन-विश्राम' दिया है—(वही. पृ० ३६, B. P. 72, Vol. 6)

३ अन्यत्र-ये जाति के 'नर्तक' = नाचने वाले कहे गए हैं—वही।

शबरपा ने कहा कि—चार सौ छोड़ दो, सौ मारो।

आर्य द्वारा निर्मित शबरपा ने एक सौ हरिन एक ही बाण द्वारा धराशायी कर दिया। एक हरिन की लाश शबरपा से उठाने को कहा और उन्होंने उठाने की चेष्टा की तो, नहीं उठा सके। शबरपा सारा अभिमान (घमण्ड) समाप्त कर घर लौट गये और उस (नैर्माणिक) शबरपा से कहने लगे कि—

उस प्रकार की (मैदान में दिखायी) अपनी शक्तिशाली बाण(विद्या) हम को (अवश्य) सिखा दीजिये।

नैर्माणिक शबरपा ने उत्तर दिया कि—उस प्रकार की बाण विद्या को सीखने के लिये एक महीना तक माँस खाना छोड़ना होगा, यह आवश्यक है।

शबरपा ने उसे मान लिया और उसी दिन से प्राणि-बध एवं हिंसा बन्द कर दिया। एक सप्ताह के बाद जब उस (नैर्माणिक शबरपा) ने उनके पास जा कर पूछा कि—आप लोगों ने क्या खाया है ?

शबरपा ने उत्तर दिया कि—(हम लोगों ने) फल आदि खाया है।

नैर्माणिक शबरपा ने कहा कि–अब आप सब लोग प्राणि मात्र के लिये मैत्री-भावना एवं दयाभावना करें (यह कह कर वे वहाँ से चले गये)। एक महीना पूरा होने के उपरान्त (वह नैर्माणिक शबरपा) वहाँ आये, तो शबरपा ने कहा कि—अब हमें हरिन आखेट का उपदेश दें।

उस नैर्माणिक (शबरपा) ने वहाँ एक मण्डल बनाया और उसे पुष्प आदि से सजा कर शबरपा को दम्पति सहित कहा कि इस मण्डल की ओर देखो। (तत्काल बाद) उन्हें फिर पूछा कि क्या देखा ? दोनों को उस मण्डल के अन्दर आठ नरक सपरिवार दिखलाई पड़े और साथ ही उन दोनों (दम्पति) ने स्वयं को वहाँ (नरक पालों द्वारा) अग्नि में पकाये जाते देखा। इससे अत्यन्त भयभीत, विकम्पित हो कर वे दोनों (उस प्रश्न का, जो नैर्माणिक शबरपा ने पूछा कि[१]—इस मण्डल के अन्दर तुम्हें क्या दिखलाई पड़ा) उत्तर नहीं दे सके।

उस (नैर्माणिक शबरपा) के बार-बार पूछने पर कहने लगे कि इस प्रकार के नारकीय प्राणी दिखलाई पड़े हैं।

नैर्माणिक ने कहा कि—आप लोगों को वहाँ जन्म ग्रहण करने में डर नहीं लगता ?

शबरपा ने उत्तर में कहा कि हम तो इस से अति भयभीत हैं पर इनसे मुक्त होने का कोई उपाय है ? (पूछने लगे)।

---

१ तन्त्र के इस विवरण जो नैर्माणिक शबरपा के साथ उनका संवाद है, बुस्तोन चक्रसम्बर-सामान्य भाष्य ने दूसरे प्रकार से, शबर के साथ बोधि सत्त्व रत्नमति का सम्वाद होने का वृत्तान्त दिया है। यह सम्भव है कि रत्नमति उस निर्मित 'शबर' का नाम है। (वही, पृ० ३६)

पुनः नैर्माणिक शबरपा ने पूछा कि—वह उपाय की साधना आप लोग कर सकेंगे।

शबरपा ने उत्तर दिया कि—हाँ, कर सकेंगे।

उस नैर्माणिक (शबरपा) ने उन्हें धर्मोपदेश दिया। वह इस प्रकार है :

प्राणि बध का विपाक परिणाम नरक में पैदा होना है। कारित्र एवं निःष्यन्द (हेतु के सदृश को निःष्यन्द फल कहा जाता है—'निःष्यन्दो हेतु सदृशः' अभि० को भा० ५७,२, इन्द्रिय निर्देश पृ० ३३०) बौद्ध भा० सं० १९७० फल प्राणि-बध करने की इच्छा निरन्तर आती रहती है।

अधिपति फल आयु क्षीत (आयु मात्रा अल्प) होता है, और पुरुषकार फल रूप प्रभाव हीन होता है।

प्राणि-बध (प्राणातिपात) कर्म को त्यागने से बोधि की प्राप्ति होती है। उस के कारित्र निःष्यन्द फलतः प्राणातिपात करने की इच्छा (वृत्ति) नहीं होती है। अधिपतिफल दीर्घायु होता है और पुरुषकार फल प्रभाव (एवं सुन्दरता आदि) से युक्त होता है।

इत्यादि दश अकुशल धर्मों के दोष एवं कुशल धर्मों की अनुशंसा (गुण) (सम्बन्धी उपदेश दिया, तो शबरपा में सांसारिक धर्मों के प्रति घृणा एवं निरर्थकता बुद्धि उत्पन्न हो गई।) और उन्हें धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा प्राप्त हो गई।

तत्पश्चात् आर्य-अवलोकेश्वर (उन्हें अनेक मार्मिक) उपदेश देकर दन्तीर (दन्तिर) पर्वत के लिए प्रस्थित हो गये।

शबरपा बारह वर्षों तक निर्विकल्प महावरुण की भावना (द्वारा साधना) करते रहे, जिसके फलस्वरूप उन्हें परम सिद्धि की प्राप्ति हुई। जब उन्हें परम सिद्धि लाभ हो गई तो वह एक दिन महाकारुणिक के धर्मता (समाधि) से व्युत्थित होकर (उठकर) आर्य अवलोकेश्वर के समक्ष गये। आर्य ने शबरपा के गुणों की भूरिशः प्रशंसा की और कहा—

कुलपुत्र तृण अग्नि-गमन (बुझने) के समान एक-पदीय निर्वाण उत्तम (पर्याप्त) नहीं है। तुम सत्वार्थ (जगत् कल्याणार्थ) संसार में रहकर अचिन्त्य सत्वों (अपरमित) प्राणियों) का अर्थ (कल्याण) करो।

(तत्पश्चात्) शबरपा अपने गुरु की आज्ञा पाकर अपने देश लौट गये और वहीं रहने लगे।

---

१ 'कारित्र' फल और 'निष्यन्द' फल,—कारित्र = क्रियाशीलता या कारकत्त्व अर्थात् कर्म के कर्ता में निहित कर्तृत्त्व शक्ति को कारित्र कहा जाता है। 'निष्यन्द' वह फल है, जो हेतु के समान स्वरूप का हो (अभिधर्म कोश-इन्द्रियनिर्देश दूसरा कोशस्थ भाष्य)

इनके तीन नाम प्रसिद्ध हैं—शबरपा, मयूरपक्ष (पंख) ओढ़ कर रहने के कारण 'मयूरवसन, सदा पर्वतों में रहने के कारण 'गिरिनाक' भी कहे जाते हैं।

मैत्रेय नाम बुद्ध के शासन के उदय होने तक उसी शरीर के साथ वे इस जम्बु-द्वीप में ही रहेंगे।[1]

गुरु शबरपा का वृत्तान्त समाप्त

---

१ बुस्तोन के अनुसार उनके रहने का स्थान दक्षिणी श्रीपर्वत है। 'शबरपा' रहने वाले पूर्व भारत बंगाल (भंगाल) के थे। 'भंगल के 'गोन्पा' (गिरिगोन्-विहार) नामक विहार में आचार्य नागार्जुन से उनकी भेंट हुई। सर्वप्रथम उन्होंने नागार्जुन से ही श्री चक्रसम्वर (के मण्डल में) दीक्षा ग्रहण की। उसके बाद बोधिसत्त्व रत्नमति से उनका साक्षात्कार हुआ। (चक्रसंवर सामान्य भाष्य—पृ० ३६-३७, बुस्तोन) पद्मकरपो के अनुसार 'शबरपा' 'नागार्जुन' और 'सरह' दोनों के शिष्य थे।



५. शवरपा

शवरपा रंग के कृष्ण हैं उनके दक्षिण हाथ में वाण वायें हाथ में बांस का धनुष है। धनुष के दोनों छोर की नोक पर सुअर के शव का ऊपरी हिस्सा और निचला हिस्सा अलग-अलग करके टांगे हुए हैं। फल और फूल से बने आभूषण तथा मोर के पंखों से बने अधोवस्त्र पहने हुए हैं। दोनों ओर उनकी दोनों पत्नियां वाण की तूणीर या तरकश लिये हुए खड़ी हैं।



६. सरहपा

सरहपा गोरे रंग के हैं। जनेऊ धारण किये हुए हैं। एक बाण लेकर उसे सीधा कर रहे हैं। वे यौवन अवस्था में हैं।

६. गुरु सरहपा का वृत्तान्त

गुरु सरहपा[१] जाति के ब्राह्मण थे। उनका जन्मस्थान पूर्वी भारत के 'राजी'[२] नामक नगर के अन्तर्गत सरोली (पेकिंग सं०, जापान से प्रकाशित वाल्यूम ८७ ल्. पृ० १७७) नामक स्थान (गाँव) है। यह डाकिनी के पुत्र थे और (वास्तव में यह) डाकि ही थे।[3] यह गुरु ब्राह्मण होते हुए भी बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा रखते थे। आचार्य अमित से धर्मोपदेश सुनते थे। फलतः गुह्य धर्म के प्रति उन्हें विश्वास हो गया। ब्राह्मण एवं बौद्ध दोनों (धर्मों के विधानानुसार) सम्वर का पालन करने लगे! दिन में ब्राह्मण धर्म के अनुसार कार्य करते थे और रात में बौद्धों के। (कुछ दिन बाद) मदिरा का सेवन किया, तो ब्राह्मण यह जानकर उनको निकाल बाहर करने के हेतु एकत्र हो गये। और (तत्कालीन महाराज रत्नफल (संभवतः रत्नपाल) से उन्होंने निवेदन किया कि—

" आप राजा हैं, तो देश में विधर्मियों को पनपने देना क्या उचित है? यह 'सरह' रोलि नगर का पन्द्रह हजार (अवधि वाले) गाँव का प्रधान होते हुए भी मदिरा पान करके जाति (धर्म) से च्युत हो गया है। अतः इसे (इस देश से) निकाल देना चाहिए।

राजा ने कहा कि पन्द्रह हजार (अवधि) के अधिपति इस को निकालना नहीं चाहता हूँ। यह कह कर स्वयं राजा ने 'सरहपा' के पास जाकर उनसे कहा—

आप ने ब्राह्मण होते हुए भी मदिरा पान कर यह उचित कर्म नहीं किया।

'सरहपा' ने उत्तर दिया कि—मैंने मदिरापान नहीं किया, फिर भी शपथ खाना हो, तो सभी ब्राह्मणों एवं जनता की सभा एकत्रित करें।

जब सब लोग एकत्र हो गये, तो सरहपा ने कहा कि 'मैंने यदि मदिरा पान किया हो, तो मेरा हाथ जल जाय और नहीं किया हो,[४] तो हमारा हाथ न जले, यह कह कर उबलते हुए तेल के अन्दर अपना हाथ डाल दिया। पर हाथ नहीं जला, राजा ने (लोगों से पुनः) पूछा कि क्या इनका मदिरापान सत्य है?

---

१ सरहपा वज्रपाणि के शिष्य थे। 'अनुत्तर तन्त्र' का अधिकांश भाग वज्रपाणि ने उन्हें दिया। उन्होंने आचार्य नागार्जुन को दिया (चक्रसंवर सामान्य भाष्य पृ० ३६)

२ राजी की जगह पर-राज्ञी, राज्ञि, राञ्ज्ञ और राञ्जी आदि शब्द विभिन्न ग्रन्थों में मिलते है।

३ डाकि होने की बात अन्यत्र भी है, करुणा पुण्डरीक में भी इनकी भविष्यवाणी की बात है—पद्-द्कर् छोस् ब्युङ् पद् कर इति० पृ० ७१।

४ मदिरा पान नहीं करने का तात्पर्य-मदिरा को उस रूप में नहीं पीने से है, जो साधारण लोग पीते हैं। अर्थात् उन्होंने मदिरा को ल्ू अलौकिक शक्ति वर्द्धक के रूप में परिणत कर दिया [पंच मकारों के सेवन की एक विशेप अवस्था में विशेप स्थिति होती है।]

सभी ब्राह्मणों ने (एक साथ कहा कि) सत्य है, इसने मदिरापान किया है। सरहपा ने पहले के वचन दोहराते हुए उबलते ताँवा का पान किया, तो भी वह नहीं जले। (उसके बाद पुनः राजा ने लोगों से कहा कि विश्वास हो गया कि इन्होंने मदिरा नहीं पी तो ब्राह्मणों ने उत्तर दिया कि नहीं, इन्होंने पी है।

(पूरी परीक्षा) (राजा ने कहा कि आप लोगों में से एक सरह के साथ) पानी के ऊपर बैठे, जो डूबेगा उसने पी और नहीं डूबेगा उसने नहीं पी 'वैसा हो' कह कर अन्य एक ब्राह्मण के साथ सरह गहरे पानी में प्रविष्ट हुए तो 'सरह' नहीं डूबे और अन्य ब्राह्मण डूब गये। सरहपा ने कहा कि (देखा) मैंने नहीं पी है। (फिर भी लोगों ने स्वीकार नहीं किया कि सरह ने मदिरा नहीं पी। (पुनः तुला पर परीक्षा हुई (यह कह कर कि तुला पर रखो, जो भारी होगा उसने नहीं पी और जो हलका पड़ेगा उसने पी। वैसा ही किया तो सरहपा भारी निकले, तो उन्होंने कहा कि मैंने मदिरा नहीं पी। उसके बाद तीन आदमी के बराबर लोहे के खंड के साथ तौलने पर भी सरह अधिक भारी निकले। उसके बाद छः आदमी के बराबर लोहे के खण्ड के साथ तौलने पर भी सरह भारी निकले। राजा ने यह कहकर घोषणा की कि—इनके समान यदि सामर्थ्य (शक्ति) हो, तो मदिरा पी सकते हैं।

(तत् पश्चात्) सभी ब्राह्मणों एवं राजा ने उनके (सरह के) चरणों में प्रणाम किया और उपदेश की याचना की। (सरहपा ने) राजा, रानी और प्रजा (तीनों) के लिए (अलग-अलग दोहों का) गायन किया, जो [बाद में] 'दोहानयिक' के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

(वहाँ के) सभी ब्राह्मणों ने अपने धर्म का त्याग करते हुए सुगत के शासन में प्रवेश लिया। (सरह के उपदेशों के आधार पर) राजा ने सपरिवार सिद्धि लाभ किया।

उसके बाद सरहपा पन्द्रह वर्षीया एक लड़की,[1] जो पहले से ही उनके पास पाचिका के रूप में रहती थी, लेकर अन्यत्र चले गये। एक विहार में रह कर पति साधना करते रहे और पत्नी भोजन आदि की व्यवस्था करती रही। एक बार (सरहपा ने कहा कि) मैं मूली का शाक खाना चाहता हूँ। पत्नी ने भैंस के दही के साथ मूली (की सब्जी) बनाकर पहुंचाया। तो (सरह) समाधि में बैठे हुए थे। पत्नी ने उन्हें नहीं जगाया, और वापस चली आई। सरहपा बारह वर्ष तक उस समाधि से नहीं उठे। जब उठे तो (अपनी पत्नी से पूछा कि) मूली की सब्जी कहाँ है? पत्नी ने उत्तर दिया कि—आप बारह वर्ष तक समाधि से उठे नहीं, अब वह सब्जी कहाँ मिलेगी। इस समय शीत काल चल रहा है, नहीं मिलेगी।

सरहपा ने अपनी पत्नी से कहा कि—मैं पर्वत और (वन में) साधना करने जाऊँगा।

---

१ महान साधक—'श्री पद्मकरपो' के अनुसार यह 'लड़की' एक नाग जाति 'डोम' या चण्डाल की लड़की थी, जो 'शर' बाण बनाती थी। (पद्म० इति० पृ० ७२)

पत्नी ने उत्तर दिया कि—काय विविक्ति (कोई) विविक्त नहीं है। चित्त निर्मित एवं विकल्पना विविक्त, परम विविक्त है। आप बारह वर्षों तक समाधि में (लीन) रहने के बाद भी सूक्ष्म (बहुत छोटी सी) मूली (की सब्जी का निमित्त भी नहीं तोड़ सके, तो पर्वतों के बीच में जाने से क्या लाभ है ?

सरहपा को (उसकी बातों की) सचाई अनुभूत होने लगी। उन्होंने निमित्त एवं विकल्पना को (सदा के लिये) परित्याग कर, अधिस्वभाव (प्राकृतिक स्वभाव) गत अर्थ का अनुष्ठान (निदिध्यासन) किया; फलतः 'महामुद्रा-परम सिद्धि' का लाभ हुआ। उन्होंने अपरमित जगत् कल्याण किया। अन्त में सपत्नीक खेचर भूमि चले गये।

गुरु सरहपा[1] का वृत्तान्त समाप्त

---

१ सरहपा-के अन्य नाम रत्नमति, रत्नबुद्धि, देवपुत्र रत्नमति, बोधि सत्त्व रत्नमति भी थे। (पद्म० इति० पृ० ७४, B. 148)

२

७. गुरु कंकरपा (कंकरिपा) का वृत्तान्त

गुरु कंकरिपा जाति के शूद्र थे। उनका जन्मस्थान मघाहुर था।

वह मघाहुर नगर के एक गृहपति स्वसमान जाति से विवाह ग्रहण कर के गृहस्थ काम-भोग के गुणों का रस-आस्वादन करते हुए रह रहे थे। उनका धर्म, मोक्ष पथों के प्रति थोड़ा भी मन न लग रहा था। (सदा) लौकिक (सुख-सुविधा) का ही अर्जन कर रहते थे।

(ऐसी अवस्था में ही) कर्म संस्कार के प्राप्त हो जाने से (एक दिन) उनकी पत्नी की इह लीला समाप्त हो गई। जब वह (गृहपति) अपनी पत्नी का शव श्मशान में पहुचाने गया, तो शव त्यागने में असमर्थ हो गया और शव (पकड़े उस) के पास बैठ कर रोते रहे। उस समय एक सुविज्ञ योगी वहाँ आ गये और उस गृहपति के पास जा कर उस से कहा कि—तुम इस श्मशान में क्या कर रहे हो ? गृहपति ने उत्तर में कहा कि—हे योगी (महाराज) (आप) मेरी इस दुर्दशा (सुख-दुःख की दशा) को नहीं देख रहे हैं ? आँख निकले हुए अन्ध, गृहस्वामिनी से छूटा हुआ श्री हीन, इस लोक में मुझसे अधिक दुःखी, और क्लेश भरा और कौन हो सकता है ?

योगी ने उस गृहपति से कहा कि....जन्म का अन्त मरण, संयोग का अन्त वियोग और सभी संस्कार (धर्म) अनित्य हैं। संसारगत सभी (धर्म) दुःख मय हैं। अतः दुःखमय सांसारिक (धर्म) से तुन्हे दुःख नहीं होगा ? (अवश्य ही होगा)। तुम मरे हुए आदमी का शव, जो पत्थर और मिट्टी के समान है, पकड़ कर बैठे रहोगे, तो क्या होगा ? इससे (अच्छा) तुम धर्म (का सहारा) ले कर दुःख का (समूल) प्रहाण करो।

(दुःखी) गृहपति ने कहा कि—हे महायोगी ! सांसारिक जन्म-मरण के दुःख से मुक्त होने का कोई उपाय हो तो मुझे अवश्य दें।

योगी ने कहा—उन (दुःखों) से मुक्त होने का उपाय (मेरे) गुरु के उपदेश हैं।

गृहपति ने कहा कि—वही मुझे प्रदान करें।

उस योगी ने, उसे (गृहपति को) अभिषिक्त कर दिया; नैरात्म-बिन्दु का उपदेश दिया।

(पुनः) गृहपति ने पूछा कि (महागुरु) इसकी भावना में कैसे करूँ ?

मरी हुई पत्नी का विकल्प त्याग दो और नैरात्म्य पत्नी—सुख एवं शून्यता का अद्वैत भाव (चित्त में संनिवेश कर उस युगनद्ध स्थिति) की भावना करो। यह कह कर उन्हें भावना करने दिया।

निरन्तर उस भावना के अभ्यास में उन्होंने छः वर्ष लगाया) छः वर्ष के बाद साधारण पत्नी की कल्पना 'दुःख' एवं शून्यता के (युगनद्ध) रस में खो गई। उनके चित्त मल से विशुद्ध हो गये। उसमें महासुख-प्रभास्वरता का रस उत्पन्न होने लगा।



७. कंकारिपा

कंकारिपा (ककालिपा), ये शमशान में बैठे हुए हैं। अपने सामने विविध प्रकार के कंकाल बिछे हुए हैं। सिर के बाल मुंड़े हुए हैं और रंग के साँवले हैं। भावना 'सूत्र' जो विशेष प्रकार की अवस्था में योगी लोग धारण किया करते हैं, लगे हुए हैं।



८. मीनपा

मीनपा रंग के सांवले हैं। वह मछली का पेट फाड़ कर निकल रहे हैं और दोनों पैर मछली के पेट के अन्दर प्रविष्ट हैं। उनके दोनों हाथ नृत्यमुद्रा में हैं।

फलतः वह गृहपति जैसे ...... (नामक) विष के उड़ जाने से भ्रान्तियाँ (दूर होकर मस्तिष्क) स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार अविद्या (जो) भ्रांति का मूल कारण है, के विष से स्वच्छ हो गये। अविपरीत अर्थ (तत्त्व) का साक्षात्कार प्राप्त हो कर उन्हें परम सिद्धि का लाभ हुआ। उनका नाम भी 'योगी कंकरिपा' प्रसिद्ध हुआ।

अपने प्रदेश (अथवा गांव) मघाहुर में अनेक लोगों को धर्मोपदेश दे कर उसी शरीर के साथ खेचर भूमि चले गये।

गुरु कंकरिपा का वृत्तान्त समाप्त

८. गुरु मीनपा का वृत्तांत

गुरु मीनपा, जन्म स्थान पूर्वी भारत। जाति के मत्स्य (मछुआ) थे। उनके गुरु महादेव थे जिनसे उन्होंने लौकिक सिद्धि का लाभ किया था।

(पूर्वी भारत) कामरूप (नामक स्थान) से कुछ ही दूरी पर ईता नामक 'सागर' था। वहाँ के) सभी मछवाहे मछली मारकर सब समय बाजार में मछली बेचते थे। (एक दिन जब) एक मछुए ने सूती जाल को अंकुश बाँधकर उसकी नोक में मांस लगाकर पानी में छोड़ा, तो एक बहुत बड़ी मछली उस जाल के अन्दर आ गई। बाहर खींचा, तो खींच नहीं पाया। उलटा मछली ने मछुआ को पानी की ओर खींच लिया। फलतः मछुआ पानी में डूब गया। (तत्काल) उस मछुए को एक बड़ी मछली ने (मुँह में डालकर) निगल लिया। फिर भी कर्मवश (संयोग से) वह मरा नहीं (जीवित रहा)।

उस समय उमा देवी महादेव से कुछ धर्म उपदेश की याचना कर रही थीं, तो महादेव ने उमा से कहा कि—मेरा यह धर्म हर-किसी को नहीं बताया जा सकता है। यह अत्यन्त गुह्य है। अतः समुद्र के अन्दर एक मकान बनाओ। वहीं बताया जायगा। उमादेवी ने वैसा ही किया। वहीं जाकर (महादेव ने) उमा देवी को अपना उपदेश दिया। (उपदेश दे ही रहे थे) उसी समय उस (सामुद्रिक) मकान के नीचे वह मछली आ गई (जिसने मछुवा को खाया था और जिसके पेट के अन्दर अब भी मछुआ जीवित रहा)। धर्म उपदेश अभी समाप्त नहीं हो पाया, पर उमा देवी को नींद लग गई। (महादेव बोलते जाते) और बीच-बीच में पूछने लगते कि समझ गई हो ? (उमा सोई हुई थीं) पर (मकान के नीचे मछली के पेट में रहने वाले) मछुए ने जी हाँ, कहते हुये उपदेश सुना। जब धर्मोपदेश समाप्त हो गया, उमादेवी की नींद टूटी और कहने लगीं कि अब उपदेश दो। उत्तर में महादेव ने कहा कि—सब धर्मोपदेश मैं दे चुका हूं। उमा ने कहा कि मैं तो आपके उपदेश कुछ अंश तक सुन पायी हूँ, उसके बाद नींद लग जाने से नहीं सुना।

महादेव—फिर जी हाँ, समझ गई, कहने वाला कौन है ?

उमा—ऐसा कहने वाली मैं नहीं हूँ।

महादेव ने अपनी अभिज्ञा से देखा तो (उस प्रकार के उत्तर देने वाले) मकान के नीचे मछली के पेट में स्थित आदमी था जिसने उनका धर्मोपदेश सुन लिया। उन्होंने सोचा कि—यह तो हमारा शिष्य बन गया है। अब इसे समय-प्रतिबद्ध (प्रतिज्ञा से प्रतिबद्ध) करना होगा। उन्होंने उस मछुआ को (मछली के पेट से बाहर किये बिना) अभिषेक (देकर साधना करने का आदेश) दिया।

मछुए ने बारह वर्ष तक मछली के पेट में ही रह कर साधना की।

एक बार श्री तपरी (श्रीतपरि) नामक स्थान के एक मछुए ने पुनः उस बड़ी

मछली (जिसके पेट में मछुआ था) को पकड़ा और उसे बाहर निकाल लाया। उसके भारीपन को देखने से लगा कि सम्भवतः उसके पेट से सोना चाँदी आदि (कोई) चीज निकल सकती है, ऐसा सोचते हुए उन्होंने मछली का पेट चीर कर देखा तो अन्दर एक आदमी बैठा हुआ था। उससे पूछा कि—तुम कौन हो ?

(मछली के पेटवाले ने) उत्तर दिया—मैं मछुआ हूँ। अमुक राजा के समय (जब मैं मछली पकड़ने समुद्र के तट पर गया, तो) इस मछली ने मुझे पकड़ लिया और निगल लिया। (उसके कथनानुसार) लोगों ने हिसाब लगाया, तो बारह वर्ष बीत गये थे। इस घटना से सब लोग आश्चर्य चकित हो गये। उनका नाम 'योगी मीनपा' प्रसिद्ध हो गया।

सब लोगों ने उनकी पूजा की और 'मीनपा' ने धरती पर नाचा, तो उनके पैर धरती के नीचे धँसने लगे। पत्थर पर नाचा, तो पत्थर से भी कीचड़ के समान उनके पैर नीचे धँसने लगे। सब लोग इससे बहुत अचंभित हुए। इस पर मीनपा ने (निम्न उक्ति) कही—

पूर्व संचित कर्म से सम्बद्धता और इस (जीवन) समय के धार्मिक छन्द के बल पर,

इस प्रकार के गुण सम्पन्न हुए, अहो स्वचित्त रत्न। पाँच सौ वर्ष तक सत्त्वार्थ (जगत् कल्याण का कार्य) करते हैं।

मीनपा, वज्रपाद और अचिन्तपा, ये तीन उनके नाम पर्याय के रूप में विख्यात हैं।

(उन्हें) प्रथमतया लौकिक सिद्धि प्राप्त हुई और (बाद में) क्रमशः भूमि, मार्ग आदि प्राप्त करके उसी शरीर के द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु मीनपा का वृत्तान्त समाप्त

९. गुरु गोरक्ष का वृत्तान्त

पूर्वी भारत में (एक समय) महाराज देवपाल राज कर रहे थे। उन्हें एक पुत्र हुआ। जब राजपुत्र बारह वर्ष की अवस्था में था, तो उसकी माँ रानी बहुत बीमार होकर मरणासन्न हो गई। माँ ने अपने पुत्र से अन्तिम वचन के रूप में कहा कि—प्राणी मात्र के सुख-दुख, पाप एवं पुण्य कर्मों से होते हैं। अतः तुम चाहे प्राण छूट जाय, पाप कर्म न करना। यह कहकर उन्होंने अपनी अन्तिम साँस बन्दकर ली।

तत्पश्चात् उनके पिता महाराज से सब लोगों ने (जनता ने) यह निवेदन किया कि आप अन्य प्रदेश से दूसरी रानी ग्रहण करें। राजा ने दूसरी रानी ले ली। कुछ ही दिन बिता एक दिन, राजा वन में सैर करने गये थे। रानी ने राज भवन के ऊपरी छत पर जा कर देखा, तो वहाँ राजपुत्र बैठे हुए दिखाई दिए और वह उनके प्रति (अत्यन्त) आसक्त हो गई। उन्हें दूत भेजकर कहा कि आप इधर आयें। जब दूत ने (रानी का संदेश पहुँचाया तो) उन्होंने अनिच्छा प्रकट की। इससे रानी बड़ी लज्जित हो गई और सोचने लगी कि 'इसने मेरा अपमान किया, इससे अधिक मन में कष्ट क्या हो सकता है। नाना उपाय के द्वारा इसे मार देना ही चाहिए'।

सभी जनता ने (अपने राज पुरुषों) से कहा और आज्ञा दी कि इस (नीच व्यक्ति) को मार दो। लोगों ने कहा कि—यह राजा का एक मात्र पुत्र है, इसको मारना सम्भव नहीं है।

उसने (रानी ने) छल कपट का सहारा लिया और अपने पूरे शरीर को खुरच-खुरच कर उसका खून निकलवा दिया, सभी वस्त्र फाड़-फाड़ कर छिन्न-भिन्न कर बिस्तर में सो गई। (जब) राजा (लौटकर अपने महल) पहुंचा (रानी की हालत देखे, पास जाकर) पूछा, किसने यह दशा की है ?

तो रानी ने उत्तर दिया—आपके राजपुत्र ने मेरे शरीर की दुर्दशा कर दी है (जिसके कारण मेरे शरीर की) ऐसी हालत हो गयी है। यह सुनकर (राजा को बड़ा क्रोध आया और कहने लगे कि) तुम्हारी ऐसी दशा कर दी, उसे मार डालो। (राजा ने) दो व्याध बुलाये और उन्हें आज्ञा कर इस कार्य में नियुक्त किया—इस राज पुत्र को जंगल में ले जाकर सभी हाथ पैर काट डालो।

दोनों यम पुरुषों (व्याधों) ने सोचा कि इसे मारना उचित नहीं है। (किसी लड़के को मारना, तो आवश्यक हो गया, अन्यथा राजा हमें प्राण दण्ड दे सकते हैं) अतः हम अपने पुत्रों को मारकर इसको जीवित रहने देंगे। राज पुत्र से कहा कि—आप को मारना हमारे लिए असम्भव हो रहा है (हृदय नहीं चाह रहा है) अतः हम अपने पुत्र को आपके लिए मार देंगे।

राजपुत्र ने उत्तर दिया कि—यह (सर्वथा) अनुचित है, (आप) मुझको ही मारिये। मेरी (दिवंगत) माँ ने (अन्तिम) वचन के रूप में मुझे कहा था कि 'शरीर

और प्राण के लिए (अर्थात् शरीर छूट जाय, प्राण तक भी छूट जाय तो) भी 'पाप कर्म' न करें।' अतः (आप लोग जैसा मेरे पिता ने आज्ञा दी है, वैसा ही करें।

उन दोनों (व्याधों ने) उन्हें एक 'पादप' (वृक्ष) मूल में लिटा दिया और उनके सभी हाथ-पैर काट डाले तथा दोनों व्याध अपने घर लौट गये।

राजपुत्र (सभी हाथ पैर कट जाने पर भी जीवित रह गया। उस स्थान में महायोगी अचिन्त आ पहुँचे। राज पुत्र की दशा एवं उनकी पात्रता देखकर) महायोगी अचिन्त (अचिन्त्य) ने उन्हें अभिषेक देकर (सम्बन्धित) अववाद (धर्मोपदेश) प्रदान किया। वहाँ से आगे एक कोस की दूरी पर कुछ गोचराने वाले दिखलाई पड़े, तो योगी ने उन लोगों के बीच जा कर कहा कि—

वहाँ, जहाँ गीध आकाश में घूम रहे हैं, उसके निकट एक वृक्ष के मूल में सभी अंग-प्रत्यंग विच्छिन्न एक आदमी रहता है। (तुम लोगों में से) कौन उसके पास जा सकता है ? उनमें से एक धूप बेचने वाले की जाति का लड़का था उसने स्वीकार किया कि मैं जा सकता हूँ। पर (मेरी यह शर्त है कि) मैं आपका कार्य सिद्ध करूँगा और आप मेरा कार्य करें।

उसने सभी योगी को सौंपने के लिए गीध के उड़ान को लक्ष्य कर वाण चलाए, जब एक वृक्ष के पास पहुँचा, तो वहाँ उस (अंग-प्रत्यंग कटे) को देखकर पुनः अपनी जगह लौट गया। योगी अचिन्त से कहा कि—वहाँ वैसा ही है। योगी ने गोपालक से कहा कि—तुम्हारे पास खाने-पीने के लिए क्या-क्या है ? (उसने उत्तर दिया कि) मुझे एक गोपालक स्वामी सांझ सबेरे खाने के लिए कुछ टुकड़े दे देते हैं। उसमें से आधा मैं, उन (अंगहीन व्यक्ति जो एक वृक्ष के मूल में स्थित है) को पहुँचा दूँगा। (योगी ने कहा कि) यह उचित है। (तुम उस) चौराङ्ग का पालन करो। यह कहा (और चले गये)।

(तत्पश्चात्) उस (बालक) ने वहाँ, (जहाँ अंग रहित व्यक्ति था) वृक्ष के साथ ही एक झोपड़ी लगाई (और उसके अन्दर उसे बैठाया), भोजन आदि देते रहे और उसके मल-मूत्र आदि सभी गन्दगी अपने हाथ से उठा कर साफ करते रहे। ऐसा करते बारह वर्ष बीत गये। उसके बाद किसी समय वह (बालक) वहाँ (झोपड़ी) में गया, तो उस (निरङ्ग व्यक्ति) को उठ खड़े देखा। अचंभित हो कर पूछा, तो उसने (निम्न दोहा) कहा—

उपाय कौशल्य परम गुरु द्वारा, धातु एवं संवृत्ति के निदर्शन से
सर्वधर्म एक स्वभावेन अधिगत हुआ, और अद्भुत है यह सुख-दुःख का अभाव

मुझे इस प्रकार हाथ पैर पैदा हो गये—कह कर आकाश में ऊपर बैठ कर गोपालक ने उस बालक से कहा कि—मैं तुम्हें उपदेश दूँ ? गोपालक ने कहा कि—मैं उपदेश नहीं चाहता हूँ। मेरा एक आचार्य था। उसने मुझे आप की सेवा करने को कहा है, इसलिये मैंने आपका इस प्रकार लाभ सत्कार किया है। यह कह कर गोपालक लड़का वापस चला गया और पूर्ववत् गो का पालन करता रहा।

एक दिन महायोगी अचिन्त गोपालक के पास आये। गोचराने वाले बालक ने अपना पूर्व वृत्तान्त उन्हें सुनाया, तो योगी बहुत प्रसन्न हुए। पुनः अचिन्त योगी हुए गोचराने वाले बालक को अभिषेक एवं अववाद (उपदेश) दे कर अन्यत्र चले गये। गोपालक अपने गुरु के उपदेश के अनुसार साधना (भावना) करता रहा। 'फलतः उसे महामुद्रा परमसिद्धि' का लाभ हुआ। एक दिन वह बैठा था कि अचिन्त उसके पास आ पहुँचे और उसे आदेश दिया कि—तुम्हें जब तक शतलक्ष (एक सौ लाख) प्राणियों का अर्थ (कल्याण) न हो जाय, बुद्धत्व लाभ न करो।

(अपने गुरु के आदेश पा कर) उसने सभी प्राणी, जो भी मिले, उसे अभिषेक करा कर उपदेश देना आरम्भ कर दिया। (लू दिन) महादेव ने (उनके पास आ कर कहा कि) आप जो मिले, उसे अभिषिक्त न करें। जो प्रार्थना करेंगे, केवल उसको ही अभिषेक दें। जो सत्व प्रज्ञा हीन हैं और जिनके अन्दर कोई श्रद्धा नहीं है, उसके लिए (ऐसा करना) उचित नहीं है। उसके बाद यथा व्याकृत वैसा ही किया।

अनेक विनेय लोगों को मुक्त कराते और गोपालन कार्य करते रहने से उनका नाम भी 'गोरक्ष' सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया।

आज भी (अभयदत्त श्री के काल में भी) जिसका उनके साथ कर्म सम्बन्ध हो (या भाग्यवान हो) उसे (उनके द्वारा) अभिषेक प्राप्त होता है। जो कर्म (विपाक से सन्तति) विशुद्ध हो, उसे उनके डमरु की आवाज सुनाई पड़ती है और अन्य लोगों को सुनाई नहीं पड़ती और दिखलाई नहीं देती। वह अदृश्य रूप से आज भी रह रहे हैं।

गुरु गोरक्ष का वृत्तान्त समाप्त



९. गोरक्ष

गोरक्ष रंग के गोरे और बाल मुड़े हुए हैं। हाथ समाहित मुद्रा में है ओर कान में सींग और कण्ठ में शंख से निर्मित आभूपण धारण किये हुए हैं निर्वसन है। गुरुदर्शन की प्रतीक्षा में आकाश की ओर देख रहे हैं।



१०. चौरंगीपा

चौरंगीपा के दोनों हाथ समाहित मुद्रा में हैं और सिर में हलकी जटा की शिखा बांधे हुए हैं। एक वृक्ष के मूल में बैठे हुए हैं। उनके समीप बगल के रास्ते से कुछ व्यापारी जा रहे हैं। ये भावना सूत्र धारण किये हुए हैं।

१०, गुरु चौरङ्गपा का वृत्तान्त

गुरु चौरङ्गपा, उपर्युक्त जो राज पुत्र अंग—प्रत्यंग काट कर एक वृक्ष के मूल में रहने वाले थे, वही हैं, उन्हें (गुरु) अचिन्त्य ने अभिषेक देकर दीक्षित किया और कुंभक वायु (की साधना-विधि) आदि (द्वारा साधन) करने दिया। 'जब तुम्हारी साधना से साध्य की सिद्धि हो जायगी तो तुम्हारा शरीर भी पूर्ववत हो जायगा।' (भविष्यवाणी देकर) अचिन्त्य अन्यत्र चले गये।

उन्होंने (तदनुसार) भावना की और बारह वर्ष के बाद उन्हें (सिद्धि प्राप्त हो गई)। उसी समय (जहाँ राजपुत्र के पिता थे, वहाँ से राजा के पास बहुत से व्यापारी सोना—चाँदी स्फटिक, मणि आदि अनेक रत्न लेकर उस ओर आ रहे थे। वे लोग उस स्थान (जहाँ राजपुत्र के हाथ पैर कटे थे, पर पहुँचे, तो चोर आदि के डर से वे लोग वहीं रात को आये और उस वृक्ष के समीप से गुजरे। राजपुत्र ने उन व्यापारियों के पद-आहत शब्द सुन कर कहा कि—कौन हो ?

व्यापारियों को शंका हो गयी कि यहाँ कोई चोर है। कहने लगे कि हम लोग कोयला बनाने वाले हैं। राजपुत्र ने कहा कि—वैसा ही हो। जब व्यापारी लोग अपने-अपने स्थान में पहुँचे तो जिन बर्तनों में सोना आदि रखे हुए थे वे सबके सब सोना-चाँदी कोयला हो गये थे। इसे देखकर सब को बड़ा आश्चर्य हुआ और सब लोग यह सोचने लगे कि ऐसा किस लिये हुआ है। उन व्यापारियों में से एक बुद्धिमान ने (यह समझकर) बताया कि हम लोगों को रात में जिस जगह से आते समय जिसने पूछा कि तुम लोग कौन हो, वह निश्चय ही एक सत्य-वचन-सिद्ध व्यक्ति होगा। (अन्यथा) ऐसा कौन कर सकता है ?

उसके बाद वे लोग (व्यापारी लोग) पुनः उस स्थान पर गये, जहाँ से वे लोग रात को गुजरे थे और एक व्यक्ति के साथ प्रश्न-उत्तर हुआ था) तो वहाँ एक वृक्ष के मूल में एक हाथ पैर कटे आदमी को बैठे हुए देखा। (व्यापारियों ने) अपना पूरा पूर्व वृत्तांत सुनाया और पुनः उनके सत्यवचन का प्रयोग करने के लिए कहा। उस राजपुत्र ने कहा कि यह मेरा दोष तो नहीं है ? यदि है, तो तुम लोगों का माल(सम्पत्ति) पूर्ववत् हो। जब व्यापारी लोग लौट कर अपने-अपने स्थानों में पहुँचे अपने माल सम्पत्ति को देखा, तो वह सब पूर्ववत् सोना, चाँदी के रूप में देखा। वे सब आश्चर्य चकित हो कर पूजा सामग्री आदि लेकर पुनः उस राजपुत्र के पास लौट कर गये और उनसे सभी वृत्तान्त सुनाया। सब सुनने के बाद राजपुत्र को उनके गुरु के द्वारा कथित भविष्यवाणी की याद आ गई और वह कहने लगे कि ऐसा हो, तो मेरा शरीर भी पूर्ववत् हो जाय।' ऐसा कहने के (तत्काल) बाद उनका शरीर पूर्ववत् हो गया।

उन्हें सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो गईं और अनेक प्रकार के चमत्कार भी उन्होंने दिखाए। दीक्षा आदि उपदेश के प्रति उनका रुख बहुत कड़ा होने से किसी को कुछ कहा नहीं, पर वृक्ष को दिखाया, तो वह अमर होकर अब भी विद्यमान है (ऐसा माना जाता है)

अमरत्व प्राप्त गुरु चौरङ्गपा का वृत्तान्त समाप्त

११. गुरु वीनपा का वृत्तान्त

वीनपा 'घहुर' (गौड़ देश) के रहने वाले थे और जाति के क्षत्रिय थे। उनके गुरु 'बुद्धपा' थे और सिद्धि उन्हे 'हेवज्र' से प्राप्त हुई।

घहुर (धहुर) देश के राजा को एक ही पुत्र हुआ था। माता-पिता एवं प्रजा सभी के लिये वह अत्यन्त प्रिय थे। (उनके पालन-पोषण आदि के लिए उन्हें) आठ माँ को सौंप दिया गया। राजपुत्र के बड़े होने पर उनके लिये मनोविनोद करने वाले बहुत से बाजा वाले थे, वे सदा उनके साथ रहते। तम्बूरा की आवाज के प्रति मन एकाग्र रूप में स्थित हो जाता था और वीणा बजाने में ही लीन होकर अन्य लौकिक कार्यों के प्रति कुछ ख्याल तक वह नहीं करते थे।

उनके माता-पिता, मन्त्री और सभी प्रजा उनकी निन्दा करने लगे और कहने लगे कि इस राज पुत्र का पालन पोषण राजा के उत्तराधिकार के लिये किया गया है। पर यह राज कार्य न कर केवल वीणा की झनकार ध्वनि में ही तल्लीन होकर बैठता है, इससे क्या होगा ?

उस समय एक अभ्यस्त योगी 'बुद्धपा' उनके पास आ पहुँचे तो योगी के प्रति उन्हें बड़ी श्रद्धा हो गई, उन्होंने योगी को प्रणाम किया और प्रदक्षिणा करके उन्हें अपने विविध प्रकार की बातों से अवगत कराया। योगी उस राजपुत्र के पास कुछ देर बैठे और देखा कि यही उसके (राजपुत्र के) सुविनीत करने का अवसर है।

योगी ने उनसे कहा कि तुम धर्म (कुछ धार्मिक अनुष्ठान) नहीं करोगे ? राज पुत्र ने कहा कि—हे योगी ! 'धर्म ग्रहण करने में तो मैं बहुत तत्पर हूँ। मैं वाद्य यन्त्र इस तम्बूरे (वीणा) को त्याग नहीं सकता हूँ। यदि इसे बिना छोड़े कोई धार्मिक साधना करने का उपाय हो, तो मैं अवश्य ही आपका धर्म ग्रहण करूँगा।

योगी ने कहा कि धर्म के लिये श्रद्धा और उद्यम हो, तो वीणा के बिना त्याग किये धार्मिक अनुष्ठान करने की विधि (अववाद) मुझे है। राजपुत्र ने कहा कि वही दें।

उस योगी ने उन्हें अपरिपाक सन्तति के परिपाक के लिये अभिषेक दिया। उनके द्वारा दी गई भावना (साधना-अभ्यास की) विधि इस प्रकार है—

हे राजपुत्र, तम्बूरा (वीणा) के शब्द कान में सुनाई पड़ने वाले विकल्प त्याग दो और चित्त आलम्बन और शब्द-विकल्प दोनों को एक करके (उसी की) भावना करो।

उन्होंने वैसा ही किया, तो नौ वर्ष बाद उनके चित्त का मल विशुद्ध होकर दीपक के समान प्रभास्वरता का अनुभव होने लगा और 'महामुद्रा (परम सिद्धि)' की



११. वीणापा

वीणापा राजा के वेश में हैं। ये वीणा बजाने की मुद्रा में बैठे हुए हैं।



१२. शान्तिपा

शान्तिपा भिक्षु एवं पण्डित के वेश में हैं। सिर में पण्डितों के लिए निर्धारित टोपी है। रंग गोरा एवं शरीर में कुछ बुढ़ापा झलक रहा है।

प्राप्ति हुई। वह अभिज्ञा अनेक गुण धर्म से सम्पन्न हो गये। नाम भी वीणापा सर्वत्र विख्यात हो गया।

उसके बाद 'धहुर' नगर के जनसमुदाय के सब लोगों को उन्होंने अनेक (अपरमित) धर्म उपदेश दिये; अन्त में अपना अवदान आदि प्रवचन देकर उसी शरीर के साथ खेचर भूमि को चले गये।

गुरु वीणापा का वृत्तान्त समाप्त

१२. गुरु शान्तिपा का वृत्तांत

गुरु शान्तिपा, जब मगध में राजा देव पाल (फल) राज कर रहे थे, उस समय विक्रम शील में एक ब्राह्मण जाति से परिव्रजित होकर आचार्य 'रत्नाकर शान्ति' नामक बड़े विद्वान हुए थे। यह आचार्य सभी पंच महाविद्या स्थानों के सुविज्ञ विशेषज्ञ थे। उनकी विद्वता एवं सदाचार का यश दिग् दिगन्तर तक व्याप्त हो गया था।

उस समय सिंहल द्वीप में 'कपिन' नामक राजा जिसके पास अपने पुण्य कर्म-वश किसी भी प्रकार के काम-गुणों (भोग-विलास) का अभाव नहीं था, रहते थे। सिंहल द्वीप में पहले बुद्ध शासन नहीं था। जम्बु द्वीप से जो लोग आते थे, उनसे बुद्ध शासन के गुणों के बारे में उन्होंने सुन रखा था। पर धर्मोपदेश देने वाला कोई व्यक्ति नहीं मिल पाया था! एक समय उन्होंने सुना कि मगध में एक महान विद्वान् आचार्य रत्नाकर शान्ति विद्यमान हैं। महाराज कपिन एवं सिंहल द्वीप के सभी लोगों ने भेंट के साथ निमंत्रण के लिये दूत भेजे ओर वे लोग सीधे (विक्रमशील) पहुंचे। दूसरे दिन वह लोग आचार्य से मिले और उन्हें प्रणाम अभिवादन किया। सिंहल राजा एवं वहाँ की जनता द्वारा प्रेषित भेंट में सोना, चांदी, मुक्तिका, रेशमी वस्त्र आदि था उन्होंने कहा कि हमारे राजा आदि लोगों का यह निवेदन है कि—'हम लोग छोटे द्वीप प्रत्यन्त जनपद में पैदा हुए हैं, अविद्या के अन्धकार से आवृत हैं, काम अग्नि से जल रहे हैं, द्वेष अग्नि से आतंकित हैं, विपरीत तिमिरादि से प्रज्ञा का प्रकाश आच्छादित है। महायान धर्म के मुक्तिमार्ग खो चुके हैं। अतः हमें महाकृपा करके सिंहल द्वीप के जगत् कल्याण के हेतु वहाँ न पधारें तो अनुचित होगा (अर्थात् किसी भी दशा में आप वहाँ दर्शन दें) यही वहाँ के लोगों की प्रार्थना है। आचार्य ने अपने आशय को सम्मुख रख कर (समाधि के द्वारा परीक्षा करके) वहाँ जाने की स्वीकृति दी।

तत्पश्चात् आचार्य शान्ति पा दो हजार शिष्य परिवार के साथ अनेक पिटक सम्बन्धित ग्रन्थों से घोड़े हाथी लाद कर सिंहल देश की ओर प्रस्थित हुए। नालन्दा, ओदन्तपुरी, राजगिरि और बुद्ध गया आदि क्रमशः पार कर सिंहल (जाने के मार्ग से) समुद्र के तट पहुँचे। वह दूत आगे भेज कर स्वयं शिष्यों के साथ नाव में बैठ कर चले।

दूत ने आगे जा कर राजा से आचार्य के आने की सूचना दी, तो राजा मन्त्री एवं जनपद के लोगों के साथ प्रथम भूमि प्राप्त (योगी के) समान आनन्दित हुआ और सब अपने लौकिक सभी कार्य त्याग कर समुद्र की ओर चल दिये और एक सप्ताह के उपरान्त (जब समुद्र के समीप पहुँचें, तो) लोगों को हाथी और छाता (जो लोगों ने आचार्य के लिये उठा रखे थे) आदि दिखलाई पड़े, तो सहर्ष रास्ते की सफाई की गई और समुद्र तट से अपने जनपद तक के रास्ते को चारों ओर ऊपर से सजाया गया; नीचे रेशमी वस्त्र बिछा दिये गए। उसी पर पैर रखते हुए सशिष्य आचार्य पाद चले। (राजभवन पहुँचने के बाद) कपिन महाराज सहित सभी लोगों

ने गन्ध-पुष्प आदि सब प्रकार की पूजा सामग्रियों से (आचार्य आदि की) विस्तृत पूजा की। उनके लिए शयन-आसन आदि की यथोचित व्यवस्था की गई। तीन वर्ष तक वहीं आचार्य त्रिपिटक सम्बन्धी उपदेश प्रवचन देते रहे।

जब आचार्य शान्ति पा के सशिष्य परिवार मध्य देश (मगध) (लौट) जाने के लिये तैयारियाँ हुईं तो राजा कपिन आदि सभी लोगों ने घोड़ा, हाथी और सोना, चाँदी मुक्तिका आदि अपरमित (धन) की दक्षिणा दी। (आचार्य अपने शिष्यों के साथ) मध्य देश लौटे। लौटते समय दो रास्ते में से वे लोग दीर्घतम (सबसे लम्बे) रास्ते से चले। क्रमशः रामेश्वर, जहाँ राजा राम ने अपनी पत्नी (सीता) को खोजते हुए लङ्कापुरी जाते समय महेश्वर का एक मन्दिर बनवाया था और जिसका नाम भी रामेश्वर पड़ा, जनपद में पहुंचे। वहाँ से (मगध आने के लिये) सात दिन बिना नाम की (वस्ती का) रास्ता पार करना था। आचार्य ने अपने साथियों से सात दिन तक की खाद्य सामग्री ले जाने के लिये कहा और वैसा ही करके चार दिन चले, तो (एक जगह पर) भाग्यशाली 'कोदलिपा' से मिले। उनके वृत्तान्त का उन्हीं के प्रसङ्ग में उल्लेख है।

तत्पश्चात् आचार्य अपने शिष्य परिवार के साथ क्रमशः विक्रमशील पहुँचे। आचार्य को वृद्धत्व के कारण आँख से दिखलाई नहीं पड़ता था। शरीर के जोड़ भी ढीले पड़ गये थे और शिष्य वर्ग उनका सेवा-सत्कार कर रहे थे। उन्हें स्थूल भोजन भी नहीं पचता था केवल भैंस के दही में शक्कर (चीनी) मिला कर सेवन किया करते थे। कुल मिला कर आचार्य सौ वर्ष के (समीप हो रहे) थे। (जब सिंहल द्वीप से लौटे, आचार्य के बारह वर्ष बीत गये विकल्प (प्रपंच) के साथ। उस समय तक (कोदलिपा) ने निर्विकल्प भावना द्वारा उस बारह वर्ष की अवधि में 'महामुद्रा' की परम सिद्धि प्राप्त कर ली। और वे समाधि में स्थित हो गये।

जब वे अपनी उस (समाधि) से उठे, तो सभी डाकिनियों एवं देवेन्द्र शक्र ने मूर्धन्य मार्ग से अमृत डाल कर उन्हें सुतृप्त कर दिया, जब कि आचार्य शान्तिपा अपने शिष्यों द्वारा ही पूजित थे। सभी डाकिनियों-देवताओं ने एक साथ यह वचन कहा कि—'यह (कोदलिपा) तो साक्षात् वज्रधर ही हैं। इनके प्रभाव से सभी देव भोग्य गुण आ गये हैं।'

(कुदलिपा ने कहा) कि—गुरु के उपदेश मिलने से पहले मैंने बाहर के पहाड़ खोदे और जब से गुरु के उपदेश मिले, मैंने चित्त का (आध्यात्मिक) पहाड़ खोदा इसलिये सिद्धि का लाभ हुआ।

उसके बाद देवेन्द्र शक्र आदि ने (कुदलिपा को) उन्हें, (त्रयस्त्रिशत) लोक देवस्थान आने के लिये निवेदन किया, तो 'कुदलि पा' ने अनिच्छा प्रकट की और कहा कि—

मैं तो गुरु चरण में प्रणाम करते जाऊंगा। बुद्ध से भी अधिक (मेरे लिये) कृतज्ञता के भाजन गुरु हैं। क्योंकि गुरु ही बुद्ध हैं, गुरु ही धर्म हैं तथा गुरु ही संघ हैं। मैं परम तीनों के शरण में जाता हूँ, और परमत्रय (मुझे) अधिष्ठित करें।

(यह कह कर) उन्होंने ज्ञान चक्षु से देखा और वहाँ से मगध दोनों स्थानों के बीच छः माह का रास्ता होते वह एक ही क्षण में विक्रमशील आ पहुँचे। ज्ञानकाय (योगी काय) द्वारा अपने गुरु को प्रदक्षिणा कर उन्होंने प्रणाम किया। गुरु और उनके शिष्यों ने उन्हें नहीं पहचाना। 'कुदलिपा' ने (अपने पुराने) विपाक काय को साक्षात् दिखा कर प्रणाम किया और अनेक प्रणाम एवं प्रदक्षिणा करके आचार्य के चरण में सिर से स्पर्श किया, तो (आचार्य) शान्तिपा ने पूछा कि आप कौन हैं ? (कुदलिपा ने कहा) मैं गुरुजी का शिष्य हूँ। (आचार्य ने कहा कि) मेरे अनेक शिष्य हैं, आपको पहचान नहीं सका हूँ। पुनः (उन्होंने) कहा कि—मैं कुदलिपा हूँ।

(जब एक दूसरे को पहचान लिया, तो) दोनों ने शान्त वातावरण में आपस में एक दूसरे से अनेक बातें कीं। गुरु ने शिष्य से पूछा कि आपने क्या गुण और विशेषता पायी है ? (कुदलिपा) ने उत्तर दिया (मेरे) साक्षात् गुरु आप के उपदेश के अनुसार साधनानुष्ठान करने से महामुद्रा धर्मकाय की प्राप्ति हुई है। गुरु (शान्ति पा) ने कहा कि—मैंने तो प्रधानतः बोलने का ही काम किया, साधना को प्रधानता नहीं दी। अर्थ की प्राप्ति नहीं हो पाई है। पर तुमने प्रधान रूप से साधना की, बोलने को प्रधानता नहीं दी, फलतः तुमको अर्थ के साक्षात्कार हो गये।

मैंने तुम्हें जो उपदेश दिया है, वह भी भूल गया हूँ। अब उपदेश भी दो, और गुण विशेषता की जो प्राप्ति हुई है, उस सभी धर्म को मुझे दो।

'कुदलिपा' ने अपने गुरु को धर्म के अनेक गुण सुनाये और जो उपदेश पहले गुरु ने उन्हें दिए थे (जिनके कारण वह सिद्ध बने) वह भी पुनः उन्हें प्रत्यर्पित कर दिया।

गुरु (शान्ति पा) ने भी बारह वर्षों तक उपदेशों की साधना अनुष्ठान किए। रत्नाकर शान्ति को महामुद्रा परमसिद्धि का लाभ हुआ और अनेक जगत् कल्याण करने के बाद वह भी खेचर भूमि के लिए प्रस्थित हो गये।

गुरु रत्नाकर शान्ति का वृत्तान्त समाप्त

१३. गुरु तन्तिपा (तनापा, तन्त्रीपा) का वृत्तान्त

गुरु तन्तिपा, सेन्धो नगर (सिन्धु नगर) नामक स्थान[१] के एक जुलाहा थे। उनके अनेक पुत्र (सन्तान) थे। उन लोगों ने बुनाई का कार्य चलाया, परन्तु अन्त में वे बहुत धनहीन हो गये। उन्होंने अपने सभी पुत्रों को जाति-अनुकूल विवाह कराकर अलग-अलग व्यवस्था कर बसा दिया। फलतः उस जनपद में जुलाहा जाति का अपरमित विस्तार हो गया।

जब उस जुलाहा की अपनी पत्नी मर गई और स्वयं भी नवासी वर्ष का वृद्ध हो गया, अधिक वृद्ध हो जाने के कारण शरीर चलाने (हिलाने-डुलाने) में भी वह असमर्थ हो गया था। उसका पालन-पोषण क्रमशः बारी-बारी कर उसकी पुत्र-वधुओं द्वारा ही हो रहा था। उसके बुढ़ापा एवं बुढ़ापे के आचरण को देखकर सब लोग हँसी मजाक उड़ा रहे थे और उसका अपमान किया करते थे। इस दशा को देखकर उसकी पुत्र-वधुओं ने एक दूसरे से विचार विमर्श करके यह तय किया कि—

हमारे यह ससुर जी बहुत वृद्ध हो गये हैं, लोगों को इन्हें देखकर घृणा आती है, हम सब लोगों से भी (बुरा भला कहकर) बहुत पाप हो जाता है। अतः इन्हें कहीं उद्यान में घास की झोपड़ी बनाकर बैठाया जाय और भोजन पानी आदि हम लोग बारी-बारी से पहुँचा दिया करें। अन्त में सब इस बात के लिये सहमत हुए और उस बूढ़े को अपने उद्यान में घास की झोपड़ी बनाकर वहाँ पहुँचा दिया गया।

(बुड्ढा उस झोपड़ी में अपने भाग्य के सहारे दिन बिता रहा था) एक समय गुरु जालन्धरपा उस जनपद में पहुँचे और उस जुलाहे के सबसे ज्येष्ठ पुत्र के पास पहुँचकर उससे कहा कि—'मुझे भोजन दो'—। (जुलाहा पुत्र ने भी सादर) 'आप यहीं विराजिये'—कहकर स्वयं (कमरे के) अन्दर चला गया। (अपनी पत्नी से कहकर) उसने अनेक प्रकार के खाना बनवाये। उसकी पत्नी ने (पति) से कहा कि आप उन (महानुभाव को) अन्दर बुलाएँ। पति ने वैसा ही किया और गुरु अन्दर पधारे। जब भोजन कार्य समाप्त हो गया, और जालन्धरपा अन्यत्र जाने के लिये तैयारी कर रहे थे, तो जुलाहा पत्नी (गृहस्वामिनी) ने (नम्रता से) कहा कि—गुरुजी, आप अन्यत्र न जाकर यहीं सोयें (हम लोग व्यवस्था करेंगे)। 'जल-न्धरपा' ने उत्तर दिया कि—मैं (गृहस्थ) मनुष्य के मकान में नहीं सोऊँगा। इस पर उस (गृहस्वामिनी) ने कहा कि—ऐसा है, तो आप हमारे उद्यान में सोयें।

---

१ तारानाथ के अनुसार—'तन्तिपा' मालव जनपद के आवन्ति (अवन्ति) नामक नगर के रहनेवाले थे। यह धर्मकीर्ति के जीवन के अन्तिम काल में हुए हैं, सिद्धि प्राप्ति धर्मकीर्ति के देहान्त के बाद हुई। इनके गुरु सिद्ध जालन्धरपा थे।

(तारा इ, पृ० १८२–८३)

यह कहकर वे उन्हें अपने उद्यान में ले गये और वहाँ दीपक शयन आदि की व्यवस्था कर दी गई।

(जब जालन्धरपा उद्यान में पहुँचे तो) वृद्ध जुलाहे ने वहाँ कुछ लोगों के आने के शब्द सुने, पर उनको यह पता नहीं था कि कौन आया है, क्योंकि आँख से दिखलाई नहीं देता था। वह वृद्ध पूछने लगा कि—यहाँ शब्द करनेवाला कौन है? आचार्य (जालन्धरपा) ने कहा कि मैं एक अतिथि हूँ। आप कौन हैं?—(बुड्ढे ने उत्तर दिया कि) मैं उन सभी जुलाहों का बाप हूँ। जब मैं जवान था, उनकी सब चल अचल सम्पत्ति का स्वामी था, पर अब (मैं बुड्ढा हो गया हूँ तो) मेरे सभी पुत्र एवं पुत्र-वधुएँ मेरा मजाक उड़ाते हैं और मुझसे घृणा करते हैं और अन्य लोगों के देख लेने के डर से मुझे इस उद्यान में छिपा कर रखा गया है। यही सांसारिक धर्मों की निस्सारता है।

(तत्पश्चात्) जालन्धरपा ने (वृद्ध) जुलाहे से कहा—'सभी संस्कृत धर्म अनित्य हैं। भगवत (सांसारिक) सभी (धर्म) दु:खमय हैं। समस्त धर्म निरात्म है, शान्त है, सुख है निर्वाण। अत: मरने के लिये पथ्य धर्म तुम नहीं चाहोगे?

(वृद्ध जुलाहे ने उत्तर दिया) जी हाँ, अवश्य चाहिये।

जालन्धरपा ने उस वृद्ध जुलाहा को 'हेवज्र' के मण्डल में अभिषेक दे (कर अनुगृहीत किया) उसे दीक्षा देकर भावना अभ्यास में लगा दिया। गुरु (जालन्धरपा) वहाँ से अन्यत्र चले गये।

उस (वृद्ध) ने भी अपने गुरु की दीक्षा को मनमें रखकर पहले की तरह अपने पुत्र वधुओं का अपलाप करना बन्द कर दिया और अपनी जवान को संयम में रखते हुए बारह वर्षों तक अपनी साधना करता रहा। इससे उसे अनेक प्रकार के गुण (सिद्धियाँ) प्राप्त हुए पर यह कोई आदमी नहीं जानता था।

(एक दिन एक विशेष घटना घटी) उस (वृद्ध) के बड़े लड़के को एक उच्च कोटि के रेशमी वस्त्र बुन कर उसे सँवारने के कार्य में व्यस्तता के कारण पिता को खाना पहुँचाना भूल गया। रात में उसकी पत्नी को इसकी याद आयी (कि, आज उस बुड्ढे के लिये) खाना नहीं पहुँचाया है। वह अपने पति आदि अन्य लोग न जानें, इस तरह से खाना लेकर वहाँ पहुँच गई। पर वहाँ तो उस झोपड़ी में जहाँ वृद्ध को रखा था, अन्दर से अग्नि की तेज रोशनी निकल रही थी। वृद्ध पन्द्रह के लगभग लड़कियों से घिरा हुआ था और विशेष उत्तम खाद्य सामग्री (चारों ओर रखी हुई थी) मनुष्य लोक में नहीं मिलने वाले अनेक प्रकार के आभूषण वहाँ सजे हुए दिखाई दिए। वह आश्चर्यचकित होकर जल्दी से लौट गई और अपने पति से कहने लगी कि अपने वृद्ध पिता को देख आओ।

उसने सोचा कि मेरे पिता मर गये होंगे—रोने लगे। फिर अन्य बहुत से लोग आ पहुँचे और सब लोग उद्यान में उन्हें देखने चले। जैसे पहले उसकी पत्नी



१३. तन्दीपा (तन्तीपा)

तन्तीपा या तन्दीपा अर्थात् तन्तु से कपड़ा बुनने वाले; सिर पर जटा बांधे हुए हैं। कपड़ा बुनने के उपकरण लेकर कपड़ा बुन रहे हैं। ये अत्यन्त वृद्धावस्था मे हैं।



१४. चमरीपा

ये जूता बनाने के काम को बीच में छोड़ कर उसी जगह पर समाधि लगाये हुए हैं। उनके हाथ समाहित मुद्रा में हैं। कंधे के ऊपर भावना सूत्र लगा हुआ है। आंखे सामने की ओर स्थिर है।

ने देखा था वैसा ही सब लोगों ने देखा और सब लोग आश्चर्य में होकर घर लौटे। उस वृत्तान्त को लोगों को सुनाया तो सब लोग यह कह बैठे कि यह कोई अमानुषिक होगा।

दूसरे दिन सैन्धव नगर के सब लोग उन्हें देखने गये और सब ने उन्हें प्रणाम किया, तो वह बाहर निकल आये। लोगों ने देखा कि उनका शरीर परिर्वातित होकर एक षोडशवर्षीय के समान हो गया था। उनके काय से अपरमित रश्मियाँ निकल रही थीं और सब लोग, उसे सहन नहीं कर पा रहे थे। उनका शरीर विमल दर्पण के समान होकर सभी दृश्य प्रभास्वर के रूप में उदित हो रहा था।

उस समय से उनका नाम तन्तिपा (तन्धुपा, तन्त्रीपा, तन्त्रिपा आदि) विख्यात हो गया। अनेक जनकल्याण करने के बाद सैन्धव नगर (सिन्धु नगर) के अपरमित लोगों के साथ उसी शरीर के द्वारा वह खेचर भूमि चले गये।

अतः अपनी श्रद्धा द्वारा गुरु की दीक्षा (उपदेश) का अध्यास करे, तो अवश्य वृद्ध होनेपर भी इसी जन्म में 'महामुद्रा परम सिद्धि' पा सकता है।

गुरु तन्तिपा का वृत्तान्त समाप्त

१४. गुरु चमरिपा का वृत्तान्त

'चमरि' से तात्पर्य जूता बनाने वाले से है। इनका वृत्तान्त इस प्रकार है— पूर्वी भारत के जनपद विष्णु नगर नामक स्थान में एक समय सभी अट्ठारह प्रकार के कलाकार पूर्ण रूप से रहते थे। उनमें ये जाति से जूता बनाने वाले एवं स्वयं भी विष्णु नगर में सभी नये-पुराने जूते बनाने का काम करते थे। इसी प्रकार अपना समय बिता रहे थे कि एक समय एक (बौद्ध) भिक्षु उनके यहाँ पधारे। उन्होंने अपना जूता बनाने का काम छोड़कर उन भिक्षु के चरणों में प्रणाम किया और उनसे अनेक प्रकार के योगक्षेम सम्बन्धी बातें कीं। उन्होंने कहा कि मैं सांसारिक (दु:खों) से बहुत दु:खी हूँ, कुछ धार्मिक कार्य करना चाहता हूँ पर अभी तक कल्याण मित्र (गुरु) के न मिलने से धर्म में प्रवेश नहीं हो पाया है। अब आप मुझे इह लोक और परलोक दोनों के लिये उपकारी धर्म (की दीक्षा) दें।

भिक्षु ने कहा कि यदि आप धर्म की साधना करने में समर्थ हों तो मैं दे सकता हूँ।

चर्मकार ने उस भिक्षु से कहा कि—मैं तो नीच जाति का हूँ, मेरे घर में आप भोजन करने की अनुमति देंगे?

भिक्षु ने उत्तर दिया कि—आज रात को आकर खाऊँगा।

उसने अपनी पत्नी आदि अपने घर के सभी लोगों को (रात में) भिक्षु के आने की सूचना दे दी। जब उस रात्रि में वह भिक्षु वहाँ आये, तो चर्मकार ने उन्हें आसन (आदि) लगा कर (बैठाया और, पैर धोना आदि (सेवा) करके उन्हें उत्तम भोजन खिलाये, अपनी पत्नी, पुत्री आदि सब लोगों को सेवा में लगा कर उनका लाभ सत्कार किया।

उनकी सेवा से प्रसन्न होकर भिच्चु ने सपत्नीक चर्मकार (एवं उसके परिवार) को अभिषेक एवं दीक्षा देकर (अनुगृहीत किया और) कहा कि—

'क्लेशादि के चर्म' हैं, मैत्री करुणा की गोद में,
गुरु दीक्षा के-एवं त्याग अष्ट धर्म के तन्तु द्वारा
सम्यक् रूप से मिला देने पर, अनाभोगिक
फल रूपी जूता बनता है।

'अद्भुत धर्मकाय जूता, मिथ्यादृष्टि से नहीं ज्ञात होगा। हर्ष एवं हर्ष-हीन दोनों के हेयोपादेय रहित तन्तु (सुतली) बनाओ। सभी प्रकार के विकल्प एवं निमित्त को चम्बरा (चर्म) बना दो। (वे सब) करुणा के अंचल में त्याग दो। गुरु के उपदेश एवं अपना अनुभव सुतली के द्वारा (उसे) मिला कर अनाभोगिक धर्मकाय का जूता बनाने की भावना करो।'

इस तरह की दीक्षा (एवं शिक्षा) दी जाने पर उसने पूछा कि इस प्रकार से भावना करने से क्या-क्या लक्षण आयेगा ?

(गुरु ने उत्तर दिया)—सर्वप्रथम संसार के प्रति घृणा का लक्षण पैदा होगा, उसके बाद सभी भूत (भौतिक) क्रमशः धर्मता विलीन होने का लक्षण आने लगेगा। यह कह कर भिक्षु अन्तर्ध्यान हो गये।

चर्मकार ने अपना पुराना मकान त्याग दिया और एक निर्जन स्थान में रहने (का प्रबन्ध किया) और भावना (द्वारा घोर साधना) आरम्भ कर दी। गुरु के वचनानुसार क्रमशः सभी लक्षण (अपने अन्दर) उत्पन्न होने लगे।

उन्हें इस प्रकार का ज्ञान होने लगा कि—मूलषड् क्लेशों (की स्थिति) और अविद्या सहित उपाय के माध्यम से (जो गुरु ने उन्हें बतलाए हैं) उनके यथास्वरूप का अवबोध हो गया। गुरु के उपदेश रूपी जूता पहना और सभी अविद्या भूमि पर व्याप्त होकर (हावी होकर) बारह वर्ष तक उन्होंने साधना की। फलतः अविद्या आदि समस्त मलों से विशुद्ध होकर उन्हें 'महामुद्रा परमसिद्धि' की प्राप्ति हो गई।

बारह वर्षो तक रात दिन जूता बनाने का काम और गुरु के उपदेश दोनों को अद्वैत भाव से (चित्त) भावना करने पर उनके सभी जूता बनाने के कार्य आदि विश्वकर्मा आदि ने कर दिया। विष्णुनगर के लोगों को यह पता नहीं लगा कि उक्त चर्मकार साधना भावना कर रहे हैं। उन्हें विशेष गुणों के लाभ होने का भी किसी को पता नहीं था। एक दिन उनका काम करने वाला एक आदमी उन्हें देखने उनके निवास स्थान पर आया, तो देखा कि—चर्मकार तो समाधि में लीन है, पर जूता बनाने का उनका कार्य 'कारीगर विश्वकर्मा' कर रहे थे। इस दृश्य को देखकर उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। (वह लौट गया) एक दूसरे से कहते सुनाते यह बात अन्त में सब लोगों में फैल गई और सब लोगों ने उन्हें देखा। सबने उनसे उपदेश (दीक्षा आदि) देने के लिये निवेदन किया।

उन्होंने गुरु चरण की सेवा अनुशंसा (प्रशंसा एवं महिमा) आदि अनेक उपदेश दिये। उन्होंने विष्णु नगर के सभी लोगों को अनेक प्रकार के धर्म-उपदेश दिये और अपरमित जगत् कल्याण किये। उनका नाम 'योगी चमरिपा' विख्यात हो गया। अन्त में उसी शरीर द्वारा वह खेचर भूमि चले गये।

गुरु चरमरिपा का वृत्तान्त समाप्त

१८. गुरु खंगपा का वृत्तान्त

खंगपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—यह मगध के रहने वाले तथा जाति के शूद्र थे। ,इनको गुरु जोगिचपत्रि (योगी चरपत्रि) से सिद्धि सामान्य (लौकिक) खंग सिद्धि की प्राप्ति हुई थी।

मगध नगर का एक किसान कर्म से जीविका चलाने वाला गृहस्थ अपने पैतृक कार्य त्यागकर सब समय चौर कर्म (चोरी) करता था। रात दिन चोरी में ही लगे रहने से (उसमें) उसे चित्त एकाग्रता प्राप्त हो गई। एक दिन वह चोर मगध के एक नगर में चोरी करने के लिये गया, पर उस दिन उसको कुछ नहीं हाथ लगा। लौटते समय एक श्मशान से आ रहा था। उस श्मशान में चपत्रिपा नामक योगी से उसकी भेंट हो गई। चोर ने उससे पूछा कि—आप यहाँ क्या कर रहे हैं?

(योगी ने उत्तर में) कहा—सांसारिक जन्म-मरण से भयभीत होकर मै यहाँ (कुछ) भावना (साधना) कर रहा हूँ।

चोर ने कहा—भावना करने से क्या फल मिलेगा?

योगी ने कहा—भावना का फल अभ्युदय और निःश्रेय सुख की प्राप्ति होती है। तुम भी (इस) धर्म (को) ग्रहण नहीं करोगे?

चोर ने कहा—धर्म के प्रति छन्द (झुकाव या श्रद्धा) तो है, पर श्मशान में भावना (साधना) करते रहने की मुझे फुरसत नहीं है। सब समय चोरी का ही काम करता हूँ; राजा, मन्त्री या गृहस्थ स्वामी आदि किसी से चोरी के द्वारा कुछ द्रव्य मिल जाता है, पर उस द्रव्य के पीछे उन लोगों से लड़ना भी होता है। अतः उन सब लोगों द्वारा (मेरा दमन) न हो सके, ऐसी एक सिद्धि मुझे चाहिये।

योगी ने उस चोर का अभिषेक किया, दीक्षा दी और उससे कहा—(तुम यहाँ से जाओ) मगध में 'गोरसमकर' (गौरीशंकर) नामक स्तूप के अन्दर देवालय है। उसके अन्दर आर्य अवलोकेश्वर की एक प्रभावशाली मूर्ति रखी हुई है। तुम तीन सप्ताह अर्थात् इक्कीस दिन तक रात-दिन बिना भूमि पर नीचे बैठे उसकी परिक्रमा करो, खाना भी खड़े-खड़े ही खाओ। मूर्ति के पैर के नीचे यदि एक सर्प आते देखो तो बिना डरे उसे सिर से पकड़ लो। (इसी से) तुम्हें सिद्धि का लाभ हो जायगा।

इस प्रकार की दीक्षा देकर योगी ने उसे साधना में लगाया।

वह चोर भी योगी के दिये हुए उपदेश एवं वचन के अनुसार अनुष्ठान करता रहा और साधना करने में लग गया। इक्कीस दिन के बाद सर्प निकल आया। उसने सर्प को सिर से पकड़ा, तो सर्प एक तलवार (खंग) बन गया। एक प्रकाशमान ज्ञान की तलवार हाथ में मिलते ही चोर का चित्त मलों से विशुद्ध हो गया और उसे खंगसिद्धि का लाभ हो गया। उस समय से उनका नाम योगी खंगपा प्रसिद्ध हो गया।



१५. खंगपा

खंगपा हाथ में तलवार लेकर आकाश में उड़ रहे हैं। उनके नीचे की ओर छाये हुए बादल, उनकी उड़ने की क्रिया को परिलक्षित कर रहे हैं। नीचे की धरती पर एक स्तूप है, जिसके नीचे सर्प निकल रहे हैं और स्तूप के अन्दर आर्यलोकेश्वर की मूर्ति विद्यमान है।



१६. नागार्जुन

नागार्जुन भिक्षु वेश मे है। ये अत्यन्त सुन्दर और रंग के साँवले है। उनके सिर के मध्य भाग से बुद्ध की भाँति छोटी-सी उष्णीष उभरी है। सिर के पीछे की ओर सर्प का फन लहरा रहा है। हाथ प्रवचन या उपदेश मुद्रा में है।

इस प्रकार उन्हें आठ सामान्य सिद्धियों में से 'खंग सिद्धि' का लाभ हुआ। (इसके बल से) काय, वाक् और चित्त के सभी भ्रान्ति मूलक मल विशुद्ध हो गये। उन्होंने मगध के सभी प्रकार के सत्वों (सभी लोगों) के लिए इक्कीस दिन तक धर्मोपदेश दिये। अन्त में कुछ (अपने) अवदान भी कहे। उसी शरीर के साथ वह खेचर भूमि चले गये।

गुरु खंगपा का वृत्तान्त समाप्त

१२. गुरु नागार्जुन का वृत्तान्त

गुरु आचार्य नागार्जुन[1] का वृत्तान्त इस प्रकार है—इनका जन्मस्थान पूर्वी भारत के अन्तर्गत कांची[2] नामक जनपद का अंग 'कहोर' था और जाति के यह ब्राह्मण थे। सिद्धि की प्राप्ति इन्हें आर्या तारा से हुई।

कहोर (नामक जनपद) में नगर की संख्या पन्द्रह हजार थी। (वहाँ नागार्जुन इनका दूसरा नाम भी होगा) ने सब लोगों का दमन किया, तो (एक समय) वहाँ के ब्राह्मणों ने इकट्ठा होकर (विचार विमर्श करने के बाद, यह) तय किया कि इसने हम सब लोगों से बहुत अनुचित व्यवहार किया। अब इससे लड़ने की अपेक्षा इस नगर को त्याग कर हमारा आन्ध्र प्रदेश में चला जाना अच्छा होगा।

जब यह बात आचार्य ने सुनी तो सभी ब्राह्मणों के पास आदमी भेजकर उन्हें यह सूचित कर दिया कि 'आप लोग अन्यत्र प्रदेशों में न जायँ। अन्यत्र बहुत दुःख भोगना पड़ेगा। हमारी सारी द्रव्य (सम्पत्ति) ले लें। यह कहकर उन्होंने सभी अपनी सम्पत्ति दान कर दी और आचार्य 'कहोर' से पलायन कर शीतवन (सिलवाई छल) पार करके नालन्दा पहुँचे। वहाँ परिव्राजक (भिक्षु की दीक्षा) ग्रहण करके उन्हें सभी पाँच विद्या संस्थानों का अध्ययन किया। अन्त में वे सर्वोत्कृष्ट सुविज्ञ विद्वान् बन गये।

तत्पश्चात् भाषण से ऊब कर साधन में मुख्य रूप से लग गये। फलतः आर्या तारा का दर्शन प्राप्त हुआ। वह धर्मपीठ नालन्दा का संघ एवं जीविका छोड़ कर अन्यत्र चले गये। परन्तु एक नगर में भिक्षाटन करके पुनः अपने पुराने स्थान में लौट आये। सोचने लगे कि मेरे इस तरह के विचार से सत्त्वार्थ (लोक कल्याण का कार्य) संपादन नहीं हो सकेगा। (विशेष) गुण प्राप्त करके मुझे लोक कल्याण करना होगा। तत्पश्चात् वह राजगिरि चले गये। वृषभभूत (वृषभ नामक भूत) के बारह भूतों का जप किया, तो पहले दिन भूकम्प हुआ। दूसरे दिन (धरती से) पानी (निकला), तीसरे दिन अग्नि का प्रज्वलन हुआ, चौथे दिन आँधी उठी, पाँचवें दिन शस्त्र (तलवार, छुरा आदि) की वृद्धि हुई, छठे दिन वज्रपात होने लगा, सातवें दिन सभी भूतनियों ने एकत्र होकर विघ्न आरम्भ कर दिया।

---

१ ये सरह के शिष्य, श्री शबरपा के गुरु थे। चक्रसम्वर सामान्यार्थ वृत्ति० पृ० ३६, बुस्तोन० ग्रन्था० ६ ('छ' पुट)।

२ पूर्व भारत में 'कांची' नामक स्थान होने की कहीं कोई सूचना नहीं मिलती। 'कांची' दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध प्राचीन नगर है। अतः यहाँ 'पूर्व' शब्द विचारणीय है। दूसरा नागार्जुन के पूर्व भारत में जन्म होने का वृत्तान्त इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता।

पर आचार्य की अचल समाधि के कारण उनका कुछ नहीं बिगड़ा। (उन्हें विचलित करने में) वे असमर्थ हो गईं। सभी भूतनियाँ (आचार्य के) सम्मुख आकर पूछने लगीं कि तुम्हें क्या चाहिये ? हम लोग क्या दे सकती हैं ?

आचार्य ने आदेश दिया कि अन्य कुछ नहीं चाहिये (केवल मेरे लिए) जीविका का प्रबन्ध करो। उन्हें लोग चार अंजलि (कुछ माप) चावल (भात) और पाँच प्रकार के शाक नित्य देने लगीं। इस भोजन को ग्रहण करते हुए आचार्य ने बारह वर्ष तक साधना की। सोचने लगे कि एक सौ आठ भूतनियाँ (विद्यायें) वश में हो जायँ, तो जगत् का कल्याण हो ? तत्पश्चात् धन्यशील गिरि[1] में चले गये और वहाँ उन्होंने यह सोचा कि 'इस पहाड़ को सोना बना दिया जाय, तो जगत्-कल्याण कर सकूँगा। उन्होंने पहले उस पहाड़ को लोहा के रूप में परिवर्तित किया। उसके बाद उसे ताम्र (ताँबे के रूप में बदल दिया। आर्य मंजुश्री ने अपने मुख से कहा कि—(यदि तुम इस पहाड़ को सोना बना दोगे तो) लोगों में अनेक विवाद खड़े हो जायँगे और पाप का ही अर्जन होगा।' उसके बाद उस कार्य को उन्होंने स्थगित कर दिया। (कहा जाता है कि) वह (पहाड़) आज भी नील-ताम्र रंग में ही है।[2]

उसके बाद वे दक्षिण (भारत के) श्रीपर्वत को चले गये। जाते समय रास्ते में एक नदी के तट पर पहुँचे। गो चराने वाले बहुत से लोग उन्हें मिले और उनसे पानी से निकलने का रास्ता पूछा कि कहाँ से पार करना है ? उन लोगों ने खराब रास्ता, जहाँ से कीचड़ और जल-जन्तु का खतरा है, दिखाया। एक दूसरे ग्वाले ने कहा कि यह रास्ता बहुत खराब है। आप यहाँ से चलें, कह वह आचार्य को (साथ) लेकर चल दिया। जब दोनों पानी के बीच में पहुँचे, तो आचार्य ने अनेक जल-जन्तु आदि का चमत्कार से भय दिखलाया। गो चराने वाले कहने लगे कि—जब तक मैं न मर जाऊँ आप डरें मत। आचार्य ने निर्मित भय समाप्त कर दिया। नदी के पार जाने के बाद आचार्य ने गो चराने वाले लड़के से कहा कि— मैं 'आर्य नागार्जुन हूँ' तुमने पहचाना ? (उसने उत्तर दिया कि) बात तो सुनी है, पर मैं पहचान नहीं सका।

आचार्य ने गो चराने वाले से कहा कि—तुमने मुझे इस नदी से पार करा दिया अब तुमको मैं जो चाहो इनाम दूँगा। गो चराने वाले (लड़के) ने कहा कि—आप मुझे राजा हो जाने का एक उपाय दें। आचार्य ने उस स्थान में एक शालवृक्ष पर कुछ पानी छिड़क दिया और तत्काल वह वृक्ष एक बहुत बड़ा हाथी बन गया। (उस लड़के को राजा बना कर) उस हाथी पर (आर्य नागार्जुन ने) सवार करवा दिया। राजा ने कहा कि राजा के लिए सेना की भी आवश्यकता होगी। आचार्य ने कहा कि जब यह हाथी चीत्कार करेगा, तत्काल सेना भी आ जायगी। वैसा ही

---

१ धन्यशील पर्वत

२ पहाड़ को सोना बनाने की इतिवृत्ति में कुछ पौराणिकता झलकती है।

हुआ। राजा का नाम सातमन्ध (शालवाहन) प्रसिद्ध हो गया।[१] और रानी का नाम हुआ सिन्धी। राजा के राज्य का नाम था महितन जनपद (……)। यह अति (सुन्दर एवं) विशेष नगर था। इन राजा के राज्य में कर देने वाले लोग चौरासी लाख थे। इतनी जनसंख्या के वे राजा थे।

आचार्य वहाँ से दक्षिण श्रीपर्वत चले गये। वहाँ भावना एवं साधना अनुष्ठान करते बहुत समय बीत गया। सातमन्ध (शालवाहन) राजा बार-बार अपने गुरु के स्मरण आने से रह नहीं सके और श्रीपर्वत जाकर आचार्य को प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम एवं अभिवादन करके उनसे कहा कि—राजश्री बहुत क्षीण प्रयोजन एवं अनेक दोष से भरी हुई है। अतः यह हमको नहीं चाहिये। मैं आचार्य जी के पास ही बैठूँगा।

आचार्य ने उनसे कहा कि—राजश्री मत छोड़ो, रत्नावली को अपना गुरु बना कर राजकाज करो, राज्य का पालन करो। अकाल मृत्यु के भय से मुक्त होने के लिए रसायन (का प्रयोग) करो।

राजा ने कहा—मुझे आचार्य जी के साथ रहने का अवसर हो तो राज्य और रसायन चाहूँगा, अन्यथा नहीं। यह कह कर राजा ने वहाँ जाना नहीं चाहा। वहीं रहने लगे। आचार्य ने राजा को (अनेक) उपदेश (एवं दीक्षा) दी और उन्होंने अपने स्थान में जाकर रसायन सिद्ध किया। वह एक सौ वर्ष तक राज करते रहे! उस अवधि में उनके राज्य के सभी लोग धन धान्य से समृद्ध हो गये और पशु पक्षी तक सुख से जीवन बिताने लगे। आचार्य ने भी बुद्ध शासन के विस्तार के अनेक कार्य किये। (इस शुभ कार्य का) भार सुरेश्वर सहन नहीं कर सके। उन्होंने अनेक प्रकार के विघ्न एवं अमंगलकारी विनाशलीलाएं आरम्भ कर दीं। सूर्य-चन्द्र का प्रकाश मन्द कर दिया, फल पुष्प पत्ती अपने आप असमय में गिरने लगे। अनावृष्टि, अकाल, महामारी, शस्त्र-अस्त्र का प्रयोग और वन, उद्यान आदि का सूखना आदि घटनायें घटने लगीं। इस दृश्य को देख कर सालवाहन राजा बहुत चिन्तित हो उठे और सोचने लगे कि—यह सब और कुछ नहीं मेरे गुरु के सम्बन्ध में कुछ विघ्न बाधा आने के ही लक्षण हैं। यह सोच कर अपने पुत्र सिद्धि कुमार (सिन्धि कुमार) को अपना राज्य सौंप कर कुछ थोड़े सेवक गण लेकर वह श्रीपर्वत की ओर पहुँचे।

आचार्य ने पूछा कि हे पुत्र, तुम किसलिये यहाँ पधारे हो? राजा ने उत्तर दिया कि—मेरा और सत्व (अन्य प्राणियों) का भाग्य क्षीण हो गया है, क्या?

---

१ लामा तारानाथ के अनुसार आचार्य ने अपने जीवन के उत्तरकाल में दक्षिण में जाकर सातवाहन राजा (भद्रसातवाहन) को अपना विनीत शिष्य बनाया।

(ता० इति पृ० ७०-७१, अध्याय १५)

जिन शासन का क्षय हो गया है क्या ?
कृष्ण पक्ष (पाप पक्ष) का क्या विजय हो गया है ?
महाकरुणा जो चन्द्रमा सदृश प्रकाशमान है,
क्या काली घटा और मेघ द्वारा आवृत हो रहे हैं ?
वज्रवत् मेरे सत् गुरु में, संस्कार स्वभाव पाप लक्षण हो रहा है ?
यह होते देख कर मैं यहीं आया हूं। महाकृपा दृष्टि से मुझे अधिष्ठित करें।
आचार्य ने उत्तर में कहा—सभी उत्पत्ति धर्मा मरणशील हैं।

सभी संयोग का वियोग होता है। सभी संचित (सम्पत्ति का) क्षय हो जाता है। सभी संस्कार का अन्त अनित्य होता है। अतः इसमें अरति (दुःख) की क्या बात है। तुम रसायन (दवाई) लेकर अपने (स्थान) चलो। पुनः उस (राजा) ने कहा—यदि गुरुजी के पास रसायन का सेवन करते रहने की अनुमति हो, तो उचित है, अन्यथा मुझे रसायन नहीं चाहिये। यह कह कर वह बैठ गया।

आचार्य ने (बोधि सत्व दान के अनुसार) सभी भोग्य सम्पत्ति का दान किया, तो ब्रह्मदेव ने एक साधारण ब्राह्मण का रूप धारण कर आचार्य से सिर का दान माँगा। आचार्य ने भी उसे अपना सिर देना स्वीकृत किया। सालवाहन राजा ने आचार्य की मृत्यु के शोक भय से पीड़ित होकर आचार्य (के निधन से पहले ही) उनके चरण में अपने सिर रखा और वह मर गया। सब लोगों ने उस ब्राह्मण की निन्दा की।

जब आचार्य ने सिर दान देने के लिये उसे काटा तो किसी भी प्रकार से सिर का छेदन नहीं हो पाया, बाद में एक कुश के। तृण से काट सिर (ब्रह्म के रूप) ब्राह्मण को दे दिया। उस समय सभी वन वृक्ष सूख गये और लोगों के पुण्य का भी बहुत क्षय हो गया।

पहले की आठ यक्षिणियों के द्वारा आचार्य के शरीर को सुरक्षित कर देने से उनका शरीर अब भी विद्यमान माना जाता है।

आचार्य के धर्म कुल सन्तति के रूप में आचार्य नागबोधि बैठे (श्रीपर्वत में) उनका (काय) प्रकाश चन्द्रमा के समान अब भी रात को दिखलाई पड़ता है। आचार्य का शरीर (जो आठ यक्षिणियों द्वारा सुरक्षित है) जिन मैत्री के शासन काल में पुनः उत्थित होकर जगत् कल्याण करेगा ऐसा कहा जाता है।

गुरु नागार्जुन का वृत्तान्त समाप्त

१ आचार्य के 'शिर' दान के रूप में माँगने वाले शातवाहन राजा के राजकुमार होने के वृत्तान्त भी मिलते हैं।

१७. गुरु कण्हपा का वृत्तान्त

गुरु 'कण्हपा' का वृत्तान्त इस प्रकार है। (इन्हें) आचार्य कण्हपा अर्थात् (इनका नाम) आचार्य कृष्णाचार्य पाद कहा जाता है। इनका जन्म स्थान सोमपुरी था[२]। उनके गुरु जालंधरपा और वह स्वयं जाति के लेखक (सम्भवतः ब्राह्मण) थे[३]।

वह राजा देवपाल द्वारा निर्मित सोमपुरी विहार के एक भिक्षु थे। पर गुरु जालन्धरपा ने (मिलने के बाद) उन्हें अभिषेक देकर 'हेवज्र' के (मण्डल में) दीक्षित किया और उपदेश देकर साधन में लगाया। बारह वर्ष तक (निरन्तर) साधना करने के बाद, एक समय (भू) कम्पन के साथ हेवज्र के देवमण्डल का दर्शन हुआ तो उन्हें बड़ा हर्ष और आनन्द उत्पन्न हुआ। उस समय डाकिनियों ने (प्रकट होकर) उनसे कहा कि—'कुल पुत्र! यह (हे वज्र मण्डल का दर्शन) विशेष लक्षण नहीं है। इससे घमण्ड मत उत्पन्न हो। क्योंकि (इसमें) सत्य-तत्व का साक्षात्कार नहीं है।

एक बार (अपने समीप) एक बहुत बड़ी पत्थर की शिला पर उन्होंने पैर रखा, तो पैर नीचे धँस गया। उनके मन में (बहुत) अभिमान हो गया कि अब मुझे सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो गयीं। उस समय भी डाकिनियों ने उसे रोका। जब वह (अपनी साधना आसन से) बाहर आये, तो उनके पैर धरती से बिना स्पर्श किये एक हाथ की ऊँचाई पर चलने लगे। उस समय भी उन्हें वही अभिमान हुआ, पर डाकिनियों ने उन्हें पूर्ववत् रोका।

आकाश में सात छत्रों, सात डमरुओं का आकाश से शब्द करते हुए चलना, उनके बिना बजाने वाले स्वतः आवाज निकालते देखकर उन्होंने यह सोचा कि अब हमें सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो गई हैं। अपने शिष्यों से उन्होंने कहा कि—मुझे सिद्धि प्राप्त हो गई है, अब जगत् कल्याण के लिये राक्षस देश लंकापुरी जाना है। तुम लोगों को भी जाना होगा। तत्पश्चात् तीन हजार अपने शिष्य परिवार के साथ वे लंका की ओर प्रस्थित हुए। जब वे सब समुद्र तट पर पहुंचे, आचार्य सब शिष्यों को समुद्र के तट पर रखकर स्वयं पानी में बिना धँसे समुद्र के ऊपर से चलने लगे। उस बीच उनके मन में पुनः यह अभिमान होने लगा कि—'मेरे गुरु को इतनी शक्ति नहीं थी पर मुझे इतनी शक्ति की प्राप्ति हो गई है।' इस तरह के विचार आते ही वह पानी में धँस गये। जब पानी की तरंगों द्वारा उन्हें समुद्र के तट पर फेंका गया,

---

१ 'कृष्ण' नाम के बहुत पण्डित और सिद्ध हुए थे, पर यह जालन्धर पाद के शिष्य कृष्णपा ही थे।

२ पद्म० इति० के अनुसार इनका जन्म स्थान भंगाल के विशेष भाग ओडिविषय (ओडियान) था

३ जाति के यह वैश्य थे। (पद्म० इति०—पृ० ८१)

उन्होंने आकाश में देखा, तो उनके गुरु जलंधरपा आकाश में विराजमान दिखाई पड़े। गुरु ने उनसे कहा कि 'कण्हपा तुम कहाँ गये हो, क्या हो गया तुम्हें ?

कण्हपा ने बड़ी लज्जा के साथ कहा कि—

मैं जगत् कल्याणार्थ लंकापुरी जा रहा था, पर गुरु से भी मैं अधिक गुण वाला हूँ, यह अभिमान पैदा होने से शक्ति क्षीण होकर मैं पानी में धँस गया हूँ। गुरु ने कहा कि—

'अब इससे कुछ उपकार नहीं होगा। मेरे देश में 'सालपुत्र' नामक स्थान में धर्मराज धर्मपाल बैठे हैं। वहीं मेरा शिष्य एक जुलाहा है। तुम वहीं जा कर वह जो कहे, वही करते रहना।

वहीं—उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि—(गुरु जी ने जो कहा है) वही करूँगा। साथ ही उनके पूर्व उपदेशों को भी मन में रखा, तो तत्काल पूर्ववत् पैर का पृथ्वी से ऊपर जाना, आकाश में सात छत्र घूमना, आकाश में डमरु की आवाज का सुनाई देना, पत्थर पर पैर रखने से नीचे धँसना आदि। प्रारम्भ हो गए इन सभी शक्तियों के प्राप्त हो जाने के बाद वे वहाँ से अपने तीन हजार[1] शिष्य परिवार के साथ साल-पुत्र जनपद में पहुँचे। वहाँ उन्होंने शिष्यों को एक ओर रखा और स्वयं उस जुलाहे (जो गुरु जलन्धरपा ने बताया था) को खोजने गए। रास्ते में उन्हें बहुत से जुलाहे मिले। उन लोगों को जब आचार्य ने देखा, तो उन सब लोगों की तन्तु टूटती थी और वे लोग स्वयं उन्हें जोड़ते थे। उन्होंने सोचा कि यह सब वह नहीं है, (जो गुरु जी ने उन्हें बतलाए थे)। नगर के अन्त में एक जुलाहा बसा हुआ था वहाँ जाकर उन्होंने देखा, तो वह जब कपड़ा बुन रहा था तन्तु टूटने पर पुनः उसे स्वयं नहीं जोड़ना पड़ता था। सभी टूटी हुई तन्तुएँ स्वयं जुट जा रही थीं। आचार्य ने निश्चय किया कि यही है, जो गुरु ने बताया था। उन्होंने उस जुलाहे के चरणों में प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम किया।

जुलाहे ने उनसे कहा कि जो मैं कहूँगा, उसे तुम वैसा ही मानोगे ? आचार्य कृष्णाचार्य ने कहा कि—हाँ, वैसा ही मानूँगा। जुलाहे ने उन्हें साथ लिया और दोनों एक श्मशान में पहुँचे। वहाँ, एक आदमी का शव पड़ा मिला। जुलाहे

---

१ शिष्यों की संख्या तीन हजार की जगह पद्म० के इति० में ७२ मिलती है। (पद्म० इति० पृ० ८२)

२ 'शेष गण भोज्य' या 'शेष गण' यह तान्त्रिकों के परिभाषिक शब्द है। भोजन विशेष, नाम 'गणचक्र' है। इसमें केवल वही लोग सम्मिलित हो सकते हैं, जिन्होंने पंचमकारों के सेवन करने में विशेषता पाई हो। इसका उपक्रम एक सीमा विशेष या अवस्था विशेष के अन्दर ही होता है। उसके बाद जो बची खाद्य सामग्री होती है, वह भी हर किसी को नहीं दी जा सकती। अतः इसे विशेष आज्ञादायी धर्मपालों एवं दिग्पालों को ही दिया जाता है। (मूल पतित भाष्य, आ० चोङ्खापा–'क' पुट)

ने कहा कि 'तुम इसका मांस खा सकोगे ? यदि खा सकते हो, तो इसे खाओ ? कन्हपा छुरा निकाल कर खाने के लिये बढ़े और काटना आरम्भ किया, तो जुलाहे ने कहा कि 'अभी ठहरो ? (अर्थात् अभी तुम्हें मांस खाने की अवस्था प्राप्त नहीं है, रुक जाओ)' उसने स्वयं तुरन्त सियार का रूप धारण किया (और उस आदमी के शव का) मांस खा डाला। तत्पश्चात् (वह जुलाहा फिर आदमी बन गया और कृष्णाचार्य से कहने लगा कि) इस प्रकार का निर्माण कार्य (चमत्कार द्वारा) करने की स्थिति (क्षमता) जब प्राप्त हो जाती है, मांस खाना होता है।

उसके बाद जुलाहे ने टट्टी किया और उसमें तीन टिकियाँ (गोलियाँ) निकलीं। उनमें से एक कृष्णपा को दिया और कहा कि इसको खाओ। 'लोग इसकी निन्दा करेंगे' यह कहकर कृष्णपा ने खाने की अनीच्छा व्यक्त की। एक गोली जुलाहे ने खुद खा ली; एक आकाश के देवताओं ने ले लिया और एक धरती के नीचे नाग लोगों ने ले लिया।

वहाँ से दोनों नगर वापस लौट आये। जुलाहे ने पाँच पण (माषक) की मदिरा ली और खाने की चीज भी। उसने कृष्णपा से कहा कि—अब अपने शिष्य परिवार को भी बुलाओ, हम सब एक चक्र की व्यवस्था करेंगे। कन्हपा ने सोचा कि यह तो एक आदमी के खाने के लिए भी भर पेट नहीं है, इससे हम तीन हजार आचार्य और शिष्यों को क्या होगा ? यह सोचते वे सब वहाँ आ गये। योगी के प्रभाव से लड्डू, भात, आदि इष्ट भोग्य वस्तु से सब प्रकार के बर्तन भर गए। इस गण-चक्र को खाते पीते सात दिन बीत गये, पर भोग्य सामग्री फिर भी समाप्त नहीं हुई। कन्हपा ने कहा कि आप के खाने पीने की सामग्री समुद्र के समान है, हम लोगों से इतना नहीं खाया जायगा, कहकर शेष भोजन की विधि द्वारा 'शेष गण भोज्य' बाहर करके कन्हपा सपरिवार जाने के लिये तैयार हो गये, तो जुलाहे ने कहा कि—

'अहो, जैसे बाल पृथग् जन, स्वतः स्वयं का विनाश किया करते हैं, उसी प्रकार ज्ञान एवं उपाय से रहित योगी की भी दशा होती है। अब अन्यत्र जाने पर भी कुछ नहीं होगा। छत्र-डमरू आदि अल्प सिद्धियाँ हैं। अब भी धर्मता का ज्ञान नहीं हुआ, साधना ही करो।' पर कन्हपा इन बातों के प्रति अनीच्छा व्यक्त करते हुए 'समधोकर' नामक स्थान चले गये।

पूर्वी सोमपुरी से लगभग सौ योजन के पार एक नगर था, उसके पास वन था, वह वहाँ गये। वहाँ—जम्बिर[1] नामक फल का एक वृक्ष था। उस वृक्ष के समीप एक लड़की (कुमारी) बैठी हुई थी। कन्हपा ने उससे कहा कि—मुझे फल दो। पर उस लड़की ने उन्हें फल देना नहीं चाहा। आचार्य ने उस फल वृक्ष पर एक

---

१ मूल ग्रंथ में इसका नाम 'लिखि' लिखा है। पर कुन खेन पद कारपो के इतिहास में 'जम्बि' लिखा है। यह अन्दर से खट्टा पानी निकालने वाला फल था। (पद० इति० पृ० ८३)

दृष्टि डाली तो सभी वृक्ष पर लगे फल भूमि पर गिर गये। लड़की के पुनः एक दृष्टिपात से सभी फल वृक्ष में अपनी-अपनी जगह पर ऊपर चिपक गये। इससे कन्हपा बड़े कुपित हुए और लड़की पर मन्त्र फूँक दिया और लड़की के सभी अंग प्रत्यंग से खून गिरने लगा और वह धरती पर गिर पड़ी।

वहाँ आस पास के सभी लोगों ने कन्हपा की निन्दा करते हुए कहा कि—बौद्ध लोग बड़े कृपालु होते हैं, पर यह योगी आदमी मारने जा रहा है। यह सुनकर कन्हपा ने चिन्तित होकर लड़की के प्रति दयापूर्वक अपने मन्त्र (की शक्ति) का दमन कर दिया और साथ ही अपनी रक्षा (के लिये जो उपाय किया जाता है, वह) भी छोड़ दिया। जब लड़की उठी उसने भी कन्हपा को मन्त्र फूँक दिया[१] फलतः कन्हपा को भी ऊपर (मुँह) और नीचे दोनों से खून स्रवित होने लगा और वह बीमार पड़ गये। कन्हपा ने 'मन्धे' नामक एक डाकिनी से कहा कि—मेरे इस खून उलटी होने वाली बीमारी की दवा दक्षिण के श्रीपर्वत पर मिलती है, उसे लेकर मुझे दो। 'वहाँ से दक्षिण श्रीपर्वत के बीच छः मास का रास्ता था, पर मन्धे उसे एक दिन में पार करके दवा ले आई और सातवें दिन जब वह अपने नगर पहुँच रही थी, उस लड़की ने जिसने कन्हपा को मन्त्रपात कर दिया था एक बुढ़िया का रूप धारण किया और रास्ते में जाकर रोती हुई बैठ गई'। मन्धे ने पूछा कि तुम क्यों रो रही हो ? बुढ़िया ने कहा कि—'क्यों न रोयें, योगी कण्हपा मर गये हैं अब वह नहीं हैं, मन्धे ने दवा भूमि पर फेंक दी। बुढ़िया उस दवाई को लेकर चल दी। डाकिनी मन्धे घर पहुँची, तो कण्हपा को जीवित देखकर (बड़ी दुःखी हुई)। कण्हपा ने कहा कि—दवा कहाँ है ? (मन्धे ने) अपना वृत्तान्त सुना कर कहा कि—अब दवा नहीं है।

(कण्हपा ने अब जीवित रहने के उपाय न देखकर) सात दिन तक अपने शिष्यों की सभा में धर्म-प्रवचन किया और अन्त में (वज्र) वाराही सिरच्छेदा (छिन्न मस्तका, सम्भवतः) (से सम्बन्धित) उपदेश दे दिया। अपने कर्म-विपाक स्वरूप शरीर को वहीं छोड़कर कण्हपा खेचर भूमि चले गये[२]।

---

१ कुन ख्येन पद कारपो के अनुसार—कण्हपा को मन्त्र फूँकने वाली लड़की जम्बिका फलकी रक्षक लड़की नहीं थी। वह देवीकोट के एक धान कूटने वाली लड़की थी। (पद० इति० पृ० ८५)

२ बुढ़िया के वृत्तान्त की जगह अन्यत्र रास्ते में बहुत सी लड़कियों के एक झील में स्नान करने की बात कही गई है। उन लड़कियों ने कण्हपा के शिष्यों को जो दवाई लेकर लौट रहे थे, यह कहकर कि कण्हपा अच्छे हो गए, स्नान के लिए रोक कर दवा छिपा दी। (पद० कर०—इति पृ० ८५)

३ वह उक्त घटना को डाकिनी का विघ्न या व्यवधान समझ गये और इस शरीर के साथ परम सिद्धि की प्राप्ति न देखकर अन्तराभव की अवस्था में परम सिद्धि की आशा करते हुए परिनिवृत हो गये। (पद० कर० इति पृ० ८५-८६)

डाकिनी मन्धे अत्यन्त क्रुद्ध होकर (बदला लेने की इच्छा से) उस लड़की, (जिसने आचार्य को मन्त्र द्वारा मार डाला) को तीनों लोक में ढूँढ़ा, किन्तु वह नहीं मिली। अन्त में 'शम्मिल' नामक एक वृक्ष के खोखले के अन्दर बैठी मिली और वहीं उसे मन्त्र फूँक कर मारा।

इस प्रकार (परम योगियों को भी) अभिमान एवं ईर्ष्या (परम सिद्धि प्राप्त करने में बहुत बड़े बाधक) विघ्न बनते हैं, यह जानना चाहिए।

गुरु कण्हपा का वृत्तान्त समाप्त



१७. कृष्णपा

कृष्णपा (कृष्णाचार्य) रंग के साँवले हैं। हाथ में डमरू और कपाल (नरकपाल) धारण किये हुए हैं। अस्थि (हड्डी) निर्मित छः प्रकार के आभूषणों से आभूषित हैं और व्याघ्र चर्म अधोवस्त्र के रूप में पहने हुए हैं। वैताली या राक्षसी पर सवार है।



१८. आर्यदेव

आर्यदेव भिक्षु एवं पण्डित के वेश मे है। सामने की ओर एकटक देखते हुए हाथ में 'करना' नामक वृक्ष की एक बहुत बड़ी पत्ती लिये हुए हैं।

१८. गुरु कर्नरिपा (कनापा) का वृत्तान्त

कर्नरिपा का वृत्तान्त इस प्रकार है। चार योनियों में से इनका जन्म उपपादप योनि में हुआ। उन्होंने श्री नालन्दा में आकर परिव्राजकत्व ग्रहण करने वालों का उपाध्यायत्व किया। इनके शिष्यों की संख्या एक लाख के लगभग हो गई। पर स्वयं अनेक आचार्यों से शिक्षा-दीक्षा, अववाद ग्रहण करने पर भी विशेष ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके। दक्षिण भारत में आचार्य नागार्जुन के रहने का समाचार सुन कर उन्हें उनके प्रति श्रद्धा हुई, इच्छा हुई कि उनके चरणों में जाकर कुछ सीखें। इससे प्रेरित होकर वे नालन्दा से चले। एक दिन वह समुद्र के तट पहुंचे जहाँ आर्य मंजुश्री एक मछुआ का रूप धारण करके बैठे थे। कर्नरिपा ने उन्हें देखा और (वह समझ गये कि यह मछुआ विशेष व्यक्ति है) उसे प्रणाम पूर्वक मण्डल आदि अर्पित करके उनसे निवेदन किया कि—

मुझे दक्षिण देश के तन्त्र (और) पीठ में जहाँ आचार्य नागार्जुन हैं, वहाँ जाना है, आप हमें रास्ता दिखा दें जिससे वहाँ जा सकें। उस मछुआ ने कहा कि—तुम वहाँ जाओ। जहाँ गहन वन दिखलाई पड़ रहा है, वहाँ आचार्य रसायन सिद्ध करने में लगे बैठे हैं।

उस (मछुआ) के निर्देशानुसार वह वहाँ गये, तो वहाँ आचार्य रसायन की बहुत सी द्रव्य-सामग्री इकट्ठी कर उसका प्रयोग कर रहे थे। यह देखकर प्रणाम अभिवादन पूर्वक अनुग्रह करने के लिये उनसे प्रार्थना की। आचार्य ने भी उन्हें अनु-गृहीत करने की अनुमति दे दी।

आचार्य ने उनको गुह्य समाज (तन्त्र के मण्डल में) अभिषेक प्रदान किया और दीक्षा-अववाद देकर अपने पास में ही रह कर भावना (साधना) करने दिया। वैसा ही कर कर्नरिपा वहीं बैठ कर साधना करते रहे।

उस वन में थोड़ी दूरी पर एक नगर बसा हुआ था। एक दिन दोनों आचार्य वहाँ भिक्षाटन करने गये। कर्नरिपा को बहुत अच्छा और स्वादिष्ट भोजन मिला। और आचार्य को उतना अच्छा स्वादिष्ट नहीं मिला। इसको देखकर आचार्य ने कहा कि—तुम्हारा यह स्वादिष्ट भोजन, जो लोग दे रही हैं, स्त्रियाँ तुम्हें आसक्त होकर दे रही हैं, यह अच्छा नहीं है। इसे तुम वृक्ष के पत्ते पर मत लो, सुई से लेकर सुई की नोक से जितना ले सको, उतना ही लो। वैसा ही किया, तो भात का एक ही दाना सुई पर लगा, पर वही खाकर वह (कर्नरिपा) रह गये।

दूसरे दिन स्त्रियों ने गेहूं के आटे से बहुत अच्छी पूड़ियाँ बनाईं और उन पर अनेक स्वादिष्ट शाक रख उसे सुई की नोक पर चढ़ा कर आचार्य (कर्नरिपा) को दिया। कर्नरिपा ने उसे ग्रहण किया और अपने आचार्य को खिलाया। साथ ही स्वयं भी खाये। आचार्य ने पूछा कि—यह तुमने कैसे ग्रहण किया? (कर्नरिपा ने) उत्तर दिया कि—जैसा गुरुजी ने निर्देश दिया है, मैंने वैसा ही करके ग्रहण किया

है। 'तुम नगर में मत जाओ, इस मकान में ही रहो। उन्होंने भी वैसा ही किया। (उस मकान के समीप एक वृक्ष पर रहने वाली) वृक्ष देवी प्रकट होकर मकान के अन्दर आई और उसने उन्हें अनेक स्वादिष्ट भोजन खिलाया तथा प्रणाम अभिवादन पूर्वक बातें भी कीं।

(कर्नरिपा ने) उसका भी भोजन (दान) ग्रहण करके अपने गुरु को खिलाया। गुरु ने पुनः पूछा कि तुमको इस तरह का भोजन कहाँ से मिला ? उन्होंने कहा कि यह वृक्ष देवी ने दिया है। आचार्य ने इस बात की परीक्षा की और वृक्ष देवी के पास जाकर देखा, तो देवी का शरीर दिखलाई नहीं पड़ा, पर उसके बाजू सहित हाथ दिखलाई पड़े। आचार्य ने उससे कहा कि मेरे शिष्य को तुम साक्षात् शरीर दिखाती हो, पर मुझे नहीं दिखाती, यह क्यों ?

वृक्ष देवी ने उत्तर दिया (वृक्ष से यह वाणी निकली) कि आप के अन्दर सभी क्लेश प्रहतव्य विद्यमान हैं, पर आपके शिष्य समस्त प्रहणीय क्लेशों से विशुद्ध हो चुके हैं, उन्होंने मुझे पूर्ण रूप से देख लिया है।

तत्पश्चात् आचार्य शिष्य दोनों में विचार-विमर्श करके यह तय हुआ कि रसायन खाना चाहिये। आचार्य ने कर्नरिपा अर्थात् आर्यदेव को रसायन दिया और स्वयं भी खाये। कर्नरिपा ने उस दवा को एक सूखे वृक्ष पर लेप दिया, फलतः वृक्ष से छाल पत्तियाँ निकलने लगे। आचार्य ने जब इसे देखा तो थोड़ा सा हँस कर कर्नरिपा से कहा कि—

तुमने मेरा रसायन लकड़ी पर लगा दिया, अब हमारा रसायन ले आओ। कर्नरिपा ने कहा कि यदि गुरुजी चाहें, तो अवश्य ले आऊँगा। यह कहकर उन्होंने एक सुराही पानी से भर दिया और उसमें थोड़ा-सा अपना मूत्र छोड़ दिया। उस पानी को फिर सूखी लकड़ी पर लगाया, तो पूर्ववत् उसमें छाल और पत्तियाँ उगने लगे। मालूम हो गया कि यह भी रसायन बन गया है। उसे लेकर आचार्य के पास गये और वह रसायन आचार्य को दे दिया। आचार्य ने कहा कि—यह इतना अधिक बन गया, कह कर उसे सूखे वृक्ष पर लगाया तो छाल और पत्तियाँ निकल आये। यह तो आचार्य को अपने शिष्य के अन्दर ज्ञान उत्पन्न हुआ या नहीं इसकी परीक्षा थी।

जब उनको यह मालूम हो गया कि शिष्य के अन्दर ज्ञान उत्पन्न हो चुका है उन्होंने कहा कि अब तुम संसार में मत बैठो। यह सुनते ही वह आकाश मार्ग से जाने के लिये भूमि से उड़े। कर्नरिपा के साथ जो पहले से ही (वृक्ष देवी) थी, उस लड़की से उन्होंने कहा कि आपने किस आशय से मेरी सेवा की है ? लड़की ने उत्तर दिया कि मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैंने केवल आपकी आँख के प्रति आसक्त होकर आपकी सेवा की है। अतः मुझे आपकी आँख चाहिए। आचार्य ने अपनी एक आँख निकालकर उसे दे दिया। फलतः सर्वत्र यह प्रसिद्ध हो गया है कि—आर्यदेव 'एकाक्ष' हैं, इसीसे उनका नाम 'कानपा' प्रसिद्ध हो गया।

आर्यदेव अथवा कर्नरिपा के नागार्जुन के उपदेश के अनुसार साधना-अभ्यास करने से चित्त के सभी मल विशुद्ध हो गये। सन्तति अति विशुद्ध एवं विमुक्त हो जाने से गुरु की वाणी सुनते ही आकाश में सात ताल की वृक्ष की ऊँचाई पर बैठ कर अनेक लोगों को धर्म का उपदेश दिया और सन्तति परिपाक कराया। जब अपने नीचे अपने गुरु को रहते देखा, तो आकाश से ही नीचे सिर करके आचार्य को प्रणाम किया। जब ऊपर के आकाश में उड़े तो ऊपरी देवताओं ने पुष्प वृष्टि की। वहीं से वह अदृश्य हो गये।

आचार्य आर्यदेव अथवा कर्नरिपा, दो नाम वाले का वृत्तान्त समाप्त

१९. थकनपा का वृत्तान्त

गुरु थकनपा (ठगने वाला) का वृत्तान्त इस प्रकार है। इनका जन्म स्थान पूर्वी भारत था। ये जाति के शूद्र थे, कर्म से अन्त (सबसे नीच) क्रम से जीविका चलाने वाले थे।

वह एक दिन किसी वृक्ष की शाखा पर बैठ कर यह सोच रहे थे कि लोगों से झूठ कैसे बोला जाय। इस तरह की कल्पना में वे लीन थे। उनके पास सुनिपुण एक भिक्षु आ पधारे। और उन्होंने उनसे कहा कि—तुम यहाँ क्या करते बैठे हो ? उसने उत्तर दिया कि—आर्य कह नहीं सकता। भिक्षु ने कहा कि—तुम झूठ न कहो और बोलो ? यदि झूठ बोलोगे, तो उसके परिणाम से नरक योनि में पैदा होगे। कर्म निष्यन्द झूठ बोलने की इच्छा बराबर चलती रहेगी। और लोगों के अविश्वास के पात्र बनोगे। उसका अधिपति फल परलोक में अपने जीव पर खेत की तरह हल चलेगा। भोग निष्यन्द फल, मुख से दुर्गन्ध आना, वचन का असत्य आदि होना और उसका पौरुष्य फल, लावणिक भूमि में पैदा होना, फल अन्नादि के रसहीन स्थान में पैदा होना आदि कहा गया है।

वह व्यक्ति झूठ बोलने के विपाक परिणाम जो पहले नहीं सुने, सुन कर बहुत भयभीत हो गये। सच कहने लगे कि—आर्य ! मैं तो थकनपा (ठगने वाला) नाम का आदमी हूँ। सदा झूठ ही बोला करता हूँ। सच तो कभी-कभी बाल के शतांश (सौवें भाग भी) नहीं बोलता हूँ। अभी भी किस को क्या और कैसे झूठ बोलें, यही सोच रहा हूँ।

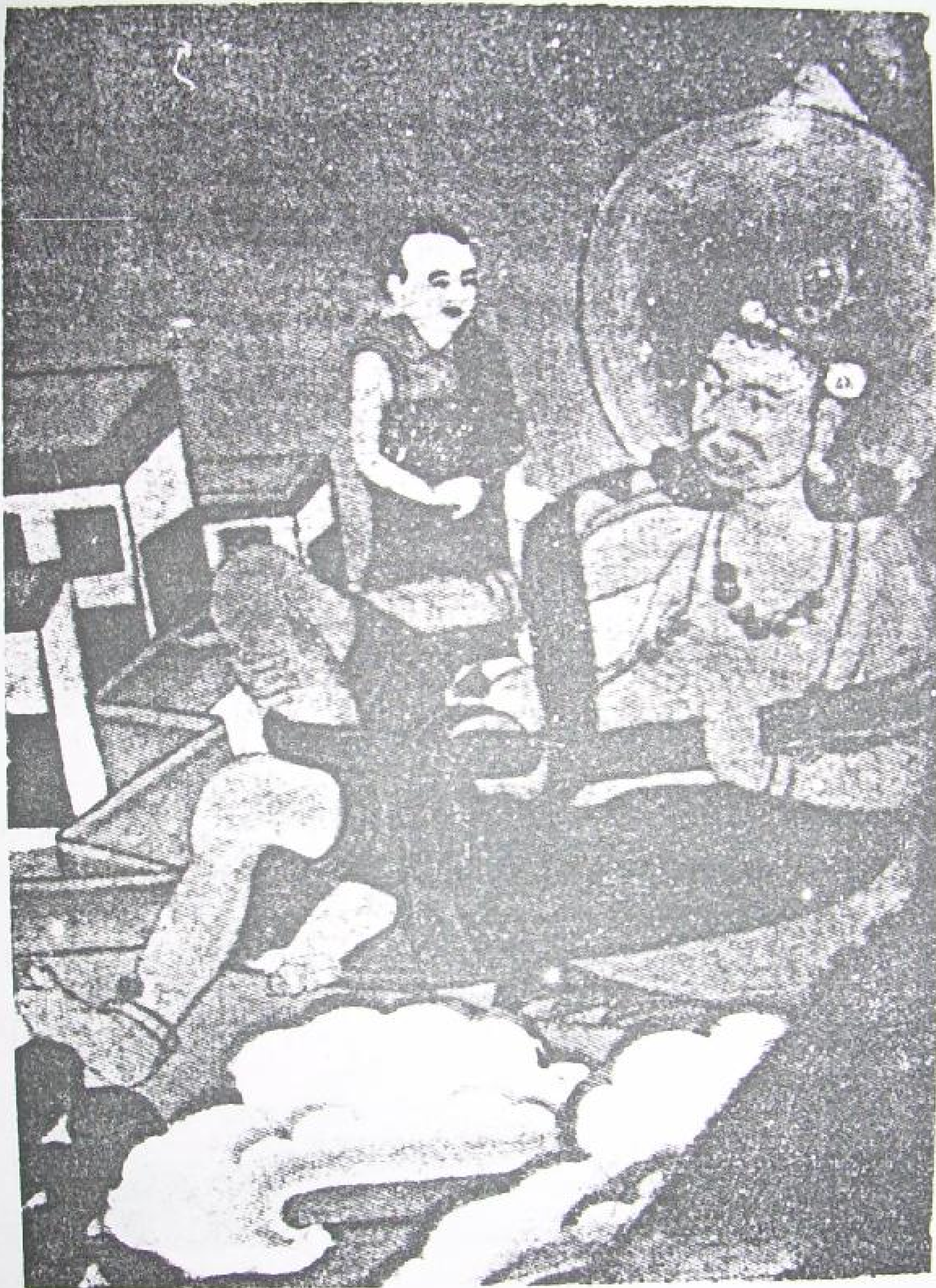
पुन: भिक्षु ने उससे कहा कि तुम कुछ धर्म कार्य नहीं कर सकते हो ?

थकनपा ने कहा कि धर्म तो अवश्य ही चाहता हूं। किन्तु आरम्भ से झूठ बोलने की आदत बन चुकी है, अतः इसको छोड़ नहीं पाऊँगा।

भिक्षु ने पुनः कहा कि—झूठ बोलने पर भी चल सकता है। ऐसा उपदेश (उपाय) मेरे पास है। थकनपा इससे बहुत प्रसन्न हो गये और कहने लगे कि (वही) धर्म मुझे चाहिये, आप दें।

उन भिक्षु ने उनके (थकनपा की) स्थिति आशा और अध्याशय के अनुसार जैसे कान में पानी घुस जाने पर निकाला जाता है ऐसे शिक्षा दी और झूठ ही झूठ का प्रतिपक्ष हो, ऐसी भावना के लिये उसे तैयार किया। उस सातत्य में उन्होंने प्रथमतया (साधना) सन्तति परिपाक के हेतु उसे (थकनपा को) अभिषेक प्रदान किया। तत्पश्चात् उनके द्वारा दिये साक्षात् अववाद इस प्रकार हैं—

'समस्त ज्ञेय धर्म आदि काल से ही झूठ मात्र हैं। तुमने जो देखा हो, सुना हो, जो कुछ भी छः इन्द्रियों के सभी विषय जो उनके द्वारा अनुभाव्य हैं, सबके सब झूठ हैं। इस प्रकार तुम (इन) सब की झूठ भावना (ये सब झूठ हैं ऐसी भावना) करो। तथापि—



१९. थकनपा

थकनपा दो नगरों के बीच मे एक वृक्ष के मूल में बैठे है। उनके दोनों ओर नगर का दृश्य है। एक सिद्ध-ज्ञानी भिक्षु सामने आकर उनसे कुछ पूछ रहे है। उनका चेहरा कुछ परेशानी की मुद्रा में है।



२०. नरोपा

नरोपा (नडपा) रंग के गहरे सांवले अर्थात् नील एवं लाल रंग मिश्रित काले रंग के हैं। सिर में जटा बांधे हुए हैं। अस्थि से निर्मित आभूषण, धारण किये हुए हैं तथा सहस्तपाद नरचर्म अधोवस्त्र के रूप में पहने हुए हैं और समाधिसूत्र या भावनासूत्र लगा कर कुछ हल्के से क्रुद्ध भाव में भावना करते हुए बैठे हैं।

भासित भव झूठे धर्मों के मिथ्यात्व अनजाने हैं झूठवाद,
ज्ञेय ज्ञान सब हैं झूठ अतः झूठ है षड् समुदाय विषय भी।
वहाँ सत् है झूठ में, झूठ में सत्याभिनिवेष के
सत्य से दुःख भोगता है संसार का,
झूठ में ही अहो बालक।

मिथ्यात्व अज्ञान सत्य गृहीत है, इससे चरखी की तरह (पानी निकालने का एक यन्त्र, जो चरखी के समान घूमती है)।

संसार में भ्रमण करते हैं पुनः पुनः, अतः तुम सभी धर्म मिथ्या हैं ऐसा समझो।

मिथ्यत्वेन सम्यक् भावना करो, शब्द झूठ ही हैं जैसे कि रूपादि हैं उसी तरह।

मिथ्याभाष्य है, तद्ग्राहक भी।

यह कहने के बाद उन्होंने (थकनपा ने) समस्त ज्ञेय (ज्ञान धर्म) के मिथ्यात्व या झूठेपन की भावना की। सात वर्ष की घोर भावना (साधना) के बाद समस्त लोक-भव (दृश्य जगत) के झूठेपन (मिथ्यात्व) को देखने का अनुभव उत्पन्न हो गया। समस्त धर्म के झूठापन के ज्ञान से सत्यानिवेश का व्यावर्तन (मूल उच्छिन्न) हो गया।

तत्पश्चात् पुनः उनके गुरु (वही भिक्षु, जिन्होंने उनको यह उपदेश दिये) आ गये। उन्होंने पुनः कहा कि—

समस्त धर्म झूठेपन में भी सिद्ध नहीं हैं (उनका अस्तित्व मिथ्यात्व में भी नहीं है), अनुत्पन्न, अनिरुद्ध स्वभाव शून्य इस तरह की भावना करो (साधना करो)।

उन्होंने भी (थकनपा ने) यही किया और वैसा ज्ञान पाकर सभी विकल्प (उपाय को शब्द के माध्यम से) (बोधि) मार्ग के रूप में उन्हें परम सिद्धि की प्राप्ति हो गयी।

उनका नाम भी सर्वत्र गुरु थकनपा विख्यात हो गया। भाग्यशाली विनेय लोगों 'को कर्णाजलि पातनिःसरण अववाद' नामक उपदेश देकर उसी शरीर के साथ वह खेचर भूमि के लिए प्रस्थित हो गये।

गुरु थकनपा का वृत्तान्त समाप्त

२०. गुरु नारोपा (नउपा) का वृत्तान्त

गुरु नउपा (नारोपा) जाति के मदिरा बेचने वाले थे। पर जाति (धर्म से) भ्रष्ट होकर वे पूर्वी भारत में सालपुत्र नामक स्थान में (जंगल से) लकड़ी इकट्ठी करके बेचते थे। लकड़ी बेचते समय एक दिन उनको यह समाचार मिला कि विष्णु नगर नामक नगर में एक बहुत बड़े विद्वान् तैलीपा रहते है। लकड़ी का एक बोझ कृष्णसार नामक हरिण के चमड़े लेकर और उसे पहन कर योगी के रूप में सीधे वह आचार्य तैलीपा (तिल्ली पा) की खोज में निकल पड़े। विष्णु नगर में पहुंचने पर लोगों से पूछा, तो लोगों ने कहा कि आचार्य यहाँ से भाग कर चले गये हैं। यहाँ नहीं हैं। नारोपा ने सभी नगर और जगहों पर खोजा, तो नहीं मिले। बहुत दिन के बाद अन्त में एक रास्ते में उन्हें वे मिले।

नउपा ने उन्हें प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम अभिवादन करके आचार्य से योगक्षेम पूछा, तो तिल्लीपा ने कहा कि तुम्हारा गुरु मैं नहीं हूँ, तुम मेरे शिष्य भी नहीं हो! यह कह कर क्रुद्ध होकर उन्हें मारने लगे। पर नउपा इससे विचलित नहीं हुए। मिट्टी के बर्तन में भिक्षा लेते रहे और उसे गुरु को खिलाते रहे। पर (गुरु) ने भोजन को लेने के बाद फिर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्हें पीटा तो भी नउपा उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा एवं विश्वास के साथ उनके बचे हुए भोजन खाते और उसके बाद प्रदक्षिणा एवं प्रणाम करते रहे।

वह रात होते वहाँ (गुरु के पास) आकर सोते थे, सबेरे दिन निकलते ही भिक्षाटन करने चले जाते, भिक्षा पाकर गुरु को खिलाते। इस प्रकार बारह वर्षों तक अथक सेवा की, तो भी गुरु ने उनके प्रति क्रोध के अलावा (कटुवचन के अलावा) एक शब्द भी सामान्य शब्द या वाक्य नहीं कहे।

एक दिन एक गृहपति के यहाँ विवाहोत्सव था। वहाँ जा कर भिक्षा माँगी तो बहुत से अच्छे-अच्छे भोज्य पदार्थ विशेष रूप के व्यंजन विभिन्न चौरासी प्रकार के वहाँ बने हुए थे उनमें से 'पात' (पालक) की स्वादिष्ट एक सब्जी मिली। सब लेकर गुरुजी को खिलाया, तो गुरुजी ने उस दिन यह सब बड़े चाव से लिया और विशेषतया उस शाक को खा कर तिल्लिपा ने कहा कि—हे बेटा, इस प्रकार का खाना तुम्हें कहाँ से मिला ?

इस कथन से नउपा इतने प्रसन्न हुए कि मानो, उन्हें प्रथम भूमि (प्रमोद भूमि) प्राप्त हो गई। सोचने लगे कि मैंने बारह वर्षों तक इनकी सेवा की पर उन्होंने मुझे तुम कौन हो ? तक नहीं कहा। आज मुझे 'बेटा' कह कर सम्बोधन कर रहे हैं।

तिल्लिपा ने पुनः कहा कि—'यह स्वादिष्ट सब्जी और भी ले आओ' ऐसा कहने पर चार बार वह उस सब्जी को लेने उस घर में गये। लोगों ने भी सहर्ष उन्हें वह सब्जी दी। पाँचवीं बार भी गुरु ने उस सब्जी को लेने भेजा तो नउपा

ने सोचा कि जायँ, तो अब शरम भी आ रही है, न जायँ तो गुरुजी नाराज हो जायँगे फिर भी वह माँगने गये, तो घर के सभी लोग अन्य काम में व्यस्त थे। नहीं मिलने पर नउपा ने उस सब्जी को बर्तन सहित उठा कर चुरा लिया और गुरुजी को खिलाया, तो गुरुजी ने प्रसन्न होकर सब खा लिया।

इससे खुश होकर तिल्लिपा ने कहा कि है बेटा ! तुमने तो अच्छा उद्यम किया, मेरी परीक्षा की। यह कह कर प्रसाद एवं अभिषेक देकर (उन्हें परिपक्व किया और वज्रवाराही की दीक्षा (अववाद) दी। तदनुसार भावना (के माध्यम से साधना) करने पर छः महीने की अवधि में ही उन्हें परम सिद्धि का लाभ हो गया। उस समय से उनका नाम 'नउपा' सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया।

सभी दिशाओं से लोग उनके पूजन के लिये आने लगे और सब आने वालों को उनके हृदय प्रदेश से प्रकाश निकलते दिखलाई पड़ा (कुछ लोगों को) एक मास के दूर रास्ते से यह दिखलाई पड़ा। उन्होंनेअपरमित विनेय लोगों का (कल्याण) अर्थ पूरा किया और अन्त में उसी शरीर के साथ खेचर भूमि चले गये।

गुरु नउपा का वृत्तान्त समाप्त

२१. गुरु श्यालिपा का वृत्तान्त

श्यालिपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—यहाँ श्यालिपा से तात्पर्य 'सियार वाला' है। इनका जन्मस्थान बल्हिपुर (विघपुर भी) था। यह जाति के शूद्र एवं मजदूरी से जीविका चलाने वाले थे।

विघपुर (बल्हिपुर) नामक नगर के समीप एक श्मशान था। उसके निकट रहने वाले निवासियों में से एक व्यक्ति सियार-ध्वनि से अत्यन्त भयभीत हुआ। (सियार रोज वहाँ इकट्ठे होकर रात को आवाज करते थे, इससे) रातदिन वह व्यक्ति सियार के भय की ही चिन्ता में पड़ा रहता था।

एक दिन उसके पास एक भिक्षु आये और उससे भिक्षा देने के लिए कहा। उसने भिक्षु के चरणों में प्रणाम किया। सच्चे हृदय से वार्ता की, पानी पिलाया। भिक्षु ने दान की अनुशंसा (उपादेयता एवं पुण्य अर्जन की बात) का प्रवचन दिया।

उसके बाद उस आदमी ने कहा कि—हे आर्य ! आपकी दान-सम्बन्धी अनुशंसा एवं देशना बहुत अद्‌भुत है, पर इसके अतिरिक्त यदि निर्भय होने के धर्म हों, तो वह मुझे अवश्य प्रदान करें।

भिक्षु ने उससे पूछा कि—तुम संसार के दुःख से डर रहे हो या किसी दूसरे से ?

उस व्यक्ति ने कहा कि—संसार के दुःख का भय, तो सर्वसाधारण है। पर मैं दुर्भाग्यवश श्मशान के निकट रहने वाला होने से निरन्तर रातदिन सदा सियार की आवाज से डरता रहता हूँ। यदि इस डर की दवा कोई धर्म हो, तो मैं उसे अवश्य ही ग्रहण करूँगा।

भिक्षु ने कहा कि—उस भय की दवा, मन्त्र एवं दीक्षा, तो मेरे पास है। पर पहले अभिषेक करना होगा। उस व्यक्ति ने सोना, चाँदी आदि अनेक द्रव्य-दक्षिणा के रूप में समर्पित किया और उनसे अभिषेक ग्रहण किया।

उनका अववाद (दीक्षा) भय से भय प्रहाण अववाद था। वह इस प्रकार है—

'तुम शत्रु आदि के भय से भयभीत नहीं हो, पर सियार के शब्द से भयभीत हो। अतः तुम इस लोक में जो भी शब्द ध्वनि होती हो, सब के सब सियार की आवाज से अभिन्न रूप में निरन्तर रातदिन सदा भावना करते रहो। रहने की जगह भी श्मशान में कुटिया बनाकर वहीं बैठो। यही उपदेश दिया।

उस व्यक्ति ने भी (जैसा गुरु ने कहा) वैसा ही किया। और भावना करते रहे। फलतः सभी शब्द शून्य ध्वनि के गर्भ में अभिन्न रूप से खो गये, इस ज्ञान के अन्दर सियार की आवाज का भय भी खो गया। इस प्रकार उनमें स्वतः भय से मुक्त होकर अभय महासुख की अनुभूति उत्पन्न होने लगी और इसी की नौ वर्ष



२१. श्यालीपा

श्यालीपा नृत्य अथवा बहुत प्रसन्न मुद्रा मे हैं । सामने कपाल आदि श्मशान का दृश्य है । सियार का शव कन्धे पर रखा है, उसका सिर सामने की ओर लटक रहा है ।



२२. तिल्लीपा

तिल्लीपा रंग के सांवले अर्थात् गहरे नील रंग के हैं । तिल कूट रहे हैं । उनकी पत्नी एक पात्र लेकर सामने से ओखले में तिल डाल रही हैं । वे पत्नी की ओर देखते हुए बड़ी प्रसन्न मुद्रा में हैं ।

तक भावना करते रहने पर उनके काय एवं चित्त के सभी मल विशुद्ध होकर उन्हें महामुद्रा परमसिद्धि की प्राप्ति हो गई।

तत्पश्चात् एक सियार का शव कन्धे पर लेते हुए चर्या-विहार किया, तो दिग्-दिगन्त में उनका नाम योगी 'श्यालिपा' प्रसिद्ध हो गया।

उन्होंने विनेय जनों को अभिन्न लोक-शून्यता की अनेक देशनाएँ दीं। अन्त में वह उसी शरीर के साथ खेचर भूमि चले गये।

गुरु श्यालिपा (श्यलिपा) का वृत्तान्त समाप्त

२२. गुरु तिल्लिपा[1] का वृत्तान्त

गुरु तिल्लिपा का जन्म स्थान विष्णु नगर (पूर्वी भारत सम्भवत:) था। विष्णु नगर नामक स्थान में आचार्य तिल्लिपा नामक एक महान् विद्वान् रहते थे। वह राजपुरोहित थे। एक दिन में पाँच सौ माषक उनका खर्चा था। वह अपरिमित शिष्य-समुदाय के बीच धर्म-उपदेश किया करते थे। इस व्यस्तता में एक दिन उन्हें यह ख्याल आया कि—मेरा जन्म इस तरह की व्यर्थता में (बिताने से) क्या होगा ? यह सोचकर वे बार-बार घर से भाग कर गये, पर परिवार के लोग उन्हें पकड़-पकड़कर ले आये और उन्हें जाने नहीं दिया। एक दिन आचार्य ने अपना चीवर वहीं छोड़ दिया और एक सिला हुआ वस्त्र धारण किया। घर में एक पत्र लिखकर रख दिया कि अब मैं लौट कर नहीं आऊँगा। लौटाने वाले न आयें। वह रातों-रात भागकर काँची नगर में पहुंचे। उस नगर के श्मशान में अपने रहने की जगह बनाई और रहने लगे। भिक्षाटन करते हुए उन्होंने जीविका चलाई और साधना करते रहे।

एक नारोपा (नउपा) से उनकी भेंट हुई। नाड़पा ने उनकी जीविका जुटाई और नाड़पा के लाभ-सत्कार ग्रहण करते हुए दस वर्षों तक वह साधना करते रहे। दस वर्ष में उनके सभी मल विशुद्ध होकर महामुद्रा परम सिद्धि का लाभ हुआ। देवलोक में गये, तो सभी देवताओं ने दधि-नैवेद्य से उनका लाभ-सत्कार किया। काय-वाक्-चित्त सभी सिद्धियाँ प्राप्त होने के कारण सर्वत्र उनका नाम तिल्लिपा प्रसिद्ध हो गया। अनेक विनय जनों को (बोधि) पथ में आरूढ़ करके अन्त में उसी शरीर के द्वारा वह खेचर भूमि चले गये।

गुरु तिल्लिपा का वृत्तान्त समाप्त

---

१ 'तैलोपा',—नामावली—डुवथब कुनतु पृ० ६१; B. N. ४० दिल्ली संस्करण



२३. चत्रपा

चत्रपा भिक्षु वेश में और चलने की मुद्रा में हैं। पीठ में पोथियाँ उठाये हुए हैं और हाथ में भी एक छोटी सी पोथी लिये हुए हैं।



२४. भद्रपा

भद्रपा गम्भीर स्वभाव के हैं तथा साथ भावनासूत्र धारण किये हुए बैठे हैं। जनेऊ भी पहने हुए हैं। संवरे बाल और हलके आभूषण से विभूषित हैं। एक ओर कुछ ऊँचे स्थान पर बैठे गुरु, जो जटा शिखा बाँधे हुए है, बैठे हैं। सामने मदिरा से भरा कलश और उस पर सुअर का मांस रखा हुआ है।

२३. गुरु चत्रपा का वृत्तान्त

'चत्रपा' का अर्थ धर्म (की पोथी) उठाकर भिक्षाटन करने वाला है। उनका जन्म स्थान सेन्धो नगर था। उस नगर में व्याकरण की पोथी हाथ में उठाकर वह सदा लोगों से भिक्षा माँगने वाले एक व्यक्ति थे।

एक समय एक सुअभ्यस्त योगी से उनकी भेंट हुई। उस योगी ने कहा कि—तुम क्या करते रह रहे हो ?

उस (भिक्षामाँगी) ने कहा कि—मैं जीविका के लिये भिक्षा माँग रहा हूँ।

उस योगी ने फिर कहा कि—तुम्हें परलोक का पथ्य नहीं चाहिये ?

उसने कहा कि उस मार्ग को हम कैसे सोचें ?

योगी ने उसको हेवज्र (के मण्डल में) अभिषिक्त कर दीक्षा दी। दीक्षा प्रवचन इस प्रकार है—

सभी पाप देशना प्रायश्चित्त है, अहोरात्र सुख भाव्यम् (भावना करो)। पूर्व-वृत्त स्व-शरीर में देखो, पश्चात् जो हो चित्त पर निर्भर है ऐसी देर तक भावना करे, तो इस जीवन में बुद्धत्व प्राप्त हो जायगा। उनका लक्षण भी क्रमश: प्रकट होगा।

'चत्रपा' इन वचनों का अर्थ नहीं समझ पाये। और उन्होंने अपने गुरु से कहा कि—'यह मैं नहीं समझ पाया हूँ।

(गुरु ने कहा कि)—पाप से तात्पर्य अविद्या है। और उससे नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं। लोक (दृश्य लोक) एवं भव अर्थात् भवलोक 'महामुद्रा' के रूप में परिज्ञात दृष्टि से पाप की शुद्धि होती है। अहोरात्र सुख-भावना से अभि-प्राय सदा करुणा की भावना से स्वयं के अन्दर सुखोदय होना एक धर्मता (स्वाभाविक है। पूर्व पर और मध्य जन्म के (रूप में भेद) अभिनिवेश ग्रस्त न हो, तो तत्वतः चर्या पूर्ण हो जाती है।

'आगे क्या हो' से तात्पर्य–सुख-दुःख सबका सब चित्त से ही उत्पन्न होता है, अब भी (उसका कारणभूत) अभिनिवेश है या नहीं है (देख लेना) है।

इस प्रकार दीर्घकाल तक–से तात्पर्य–उद्यम से बढ़ाकर (प्रयत्न बढ़ाकर) अविक्षिप्त रूप से चित्त में देखना है।

इस प्रकार सदा भावना करने से चित्त-गत भ्रान्तियाँ परिनिवृत होकर इसी जन्म में फूल रूपी बुद्धत्व की प्राप्ति हो जाती है। गुरु ने इस प्रकार की देशना दी। तदनुसार चत्रपा अपने स्थान से सेन्धो नगर में भावना करते रहे।

छः वर्ष के बाद उन्हें महामुद्रा परमसिद्धि का लाभ हुआ। उनका नाम सर्वत्र 'चत्रपा' प्रसिद्ध हुआ। सातवें वर्ष पाँच सौ शिष्य परिवार के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु चत्रपा का वृत्तान्त समाप्त

२४. गुरु भद्रपा का वृत्तांत

गुरु भद्रपा जाति के ब्राह्मण थे।

उस स्थान में एक ब्राह्मण अनेक परिवार एवं धन-धान्य से परिपूर्ण जीवन बिता रहे थे। वे सदा उद्यत चित्त के साथ रहते थे। एक समय सब परिवार के लोग बाहर स्नान के लिए गये थे और वह अकेले घर में रह रहे थे, तो उनके पास एक सु-अभ्यस्त शिक्षित योगी आ पहुँचे। उन्होंने उनसे खाना माँगा। ब्राह्मण ने कहा—

तुम गन्दे हो। हमारे परिवार के एवं अन्य लोग मेरी निन्दा करेंगे। तुम यहाँ से शीघ्र जाओ। योगी ने कहा कि—हे ब्राह्मण! गन्दा किस को कहते हैं?

ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि—शरीर का स्नान नहीं किया हो, वस्त्र न हो, कपाल का बर्तन लिया हो, खाना गन्दा खाता हो, नीच जाति का हो, उसे गन्दा कहते हैं, तुम यहाँ से शीघ्र जाओ।

योगी ने कहा कि—ये सब गन्दे नहीं हो सकते (अर्थात् तुम्हारे 'गन्दे' की परिभाषा गलत) है। काय, वाक् और मन से अकुशल ही गन्दा है, अशुचि है। शरीर धोने से चित्त का मल साफ नहीं हो सकता है। जिसने गुरु के वचन (दीक्षा) द्वारा चित्त मल धोया हो, वही शुद्ध है।

और भी—

'उत्तम है, जो महायान गोत्र से युक्त हो, पर जैन ब्राह्मण ऐसा नहीं है। शरीर आदि मल अकुशल, युक्त सन्तति गुरु वचन से'

'धोया अनुचर विशुद्ध है,
जल स्नान ऐसा नहीं है। उत्तम है, निरासक्त भोजन भजन'

यह दोहा कहने पर ब्राह्मण के मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई और उसने कहा कि—
तुम उस तरह का एक उपदेश मुझे दो।
योगी ने कहा कि—पहले मुझे खाना दो। फिर वैसा करूँगा।
ब्राह्मण ने कहा कि—मैं यदि आप से धर्मोपदेश सुनूं तो परिवार के लोग और अन्य लोगों को भी अच्छा नहीं लगेगा।

उनकी श्रद्धा नहीं होगी। जहाँ आप रहते हैं (धर्मोपदेश सुनने के लिए) मैं वहाँ आऊँगा। आप कहाँ रहते हैं?

योगी ने कहा—मैं श्मशान में रहता हूं। शुक का मांस एवं मदिरा लेकर तुम वहीं आओ।

ब्राह्मण ने कहा कि—हम ब्राह्मण लोगों के लिए मदिरा एवं शुक मांस के नाम तक का उच्चारण करना अनुचित है, तो वैसा कैसे ले आ सकते हैं?
योगी ने कहा—यदि उपदेश (अववाद) चाहते हो, तो ले आना।

ब्राह्मण ने कहा—दिन में तो वहाँ नहीं आ सकूँगा। रात को वैसा करके वहाँ आऊँगा।

तत्पश्चात् रात में ब्राह्मण ने अपनी वेश-भूषा बदली और बाजार में जाकर मदिरा एवं शुक का मांस खरीदा। उसे लेकर श्मशान गया। योगी को उसे खिलाया भी।

योगी ने उसको स्वयं तो खाया ही और ब्राह्मण को भी खिलाया। उसके बाद 'प्रभाव-संक्रमण'—अभिषेक दे कर (उसे दीक्षित किया)। ब्राह्मण को मण्डल अर्पण करने को कहा, (और उसने वैसा ही किया)। ब्राह्मण का जाति-विकल्प तोड़ने के लिए वहाँ सफाई कराई। और कहा कि—इसके द्वारा दृष्टि (दर्शन) का संकेत होता है। उनसे वहाँ लिपाई भी करवाई। कहा इसके द्वारा 'चर्या' का संकेत होता है, लिपाई के रंग द्वारा भावना का संकेत होता है। इन तीनों (दृष्टि, चर्या और भावना) के एकत्व (अर्थात् अद्वैत भाव) से फल का संकेत होता है। यह कहने के बाद, ब्राह्मण ने उपर्युक्त सभी संकेतों का अभिप्राय समझ लिया। फलतः उन्हें भवलोक (के समस्त अस्तित्व) की भ्रान्ति के विवर्त-मात्रता का अवबोध हो गया। उसने सभी प्रकार के जाति विकल्पों का परित्याग किया और योग में प्रवेश ले कर भावना किया, तो छः वर्ष की अवधि में उसे 'महामुद्रा' परम सिद्धि का लाभ हो गया। सर्वत्र योगी भद्रपा के नाम से वह प्रसिद्ध हो गये।

अनेक जगत् कल्याण करने के बाद पाँच सौ शिष्य परिवार के साथ वह उसी शरीर से खेचर भूमि चले गये।

गुरु भद्रपा का वृत्तान्त समाप्त

२५. गुरु धुखन्धि का वृत्तान्त

गुरु धुखन्धि का का अर्थ दो का एक करने वाला है। इनका जन्म स्थान मन्धपुर (संभवत: मन्दपुर) था। वह जाति के भिखारी कूड़ा-कर्कट उठाने वाले, (सम्भवतः जमादार) थे। वे सब समय चिथड़े उठा कर ले आते थे और उन्हें ढंग से सिला कर पहनते थे। एक दिन एक निपुण योगी उनके निकट आ पहुँचे। योगी ने उनसे कहा कि—

तुम व्यर्थ इस तरह के दुःख क्यों भोग रहे हो? कोई धर्म ग्रहण नहीं करोगे।?

उसने कहा कि—मुझे धर्म उपदेश कौन देगा?

योगी ने कहा कि—मैं दूँगा, यह कह कर उन्होंने उस (व्यक्ति) को श्री चक्र संवर (के मण्डल में प्रवेश करा कर) अभिषेक दिया और उत्पत्ति-सम्पन्न दोनों की युगनद्ध भावना की देशना दी। जब भावना की, तो कपड़ा (चिथड़े) सिलाने के विकल्प ने उसे भावना करने में अनीच्छा पैदा कर दी। उन्होंने योगी से कहा कि हे योगी! मेरे (चित्त) विकल्प से विक्षिप्त होकर भावना करने में अनीच्छा पैदा हो रही है। इस पर योगी ने कल्पना मार्ग में बदलने की देशना दी। वह इस प्रकार है—

'धर्मों के तात्विक रस में, सिलाई कुछ नहीं है
देव और मन्त्र भी वैसे ही हैं, तीनों की कल्पना धर्मधातु है'

उस (जमादार)ने भी वैसी भावना की, तो कपड़ा सिलने की कल्पना देवता और मन्त्र तीनों धर्मता के रस में खो गये। उसे उत्पत्ति सम्पन्न युगनद्ध ज्ञान उत्पन्न हो गया। बारह वर्षों तक साधना करने पर उसे 'महामुद्रा' सिद्धि की प्राप्ति हो गई।

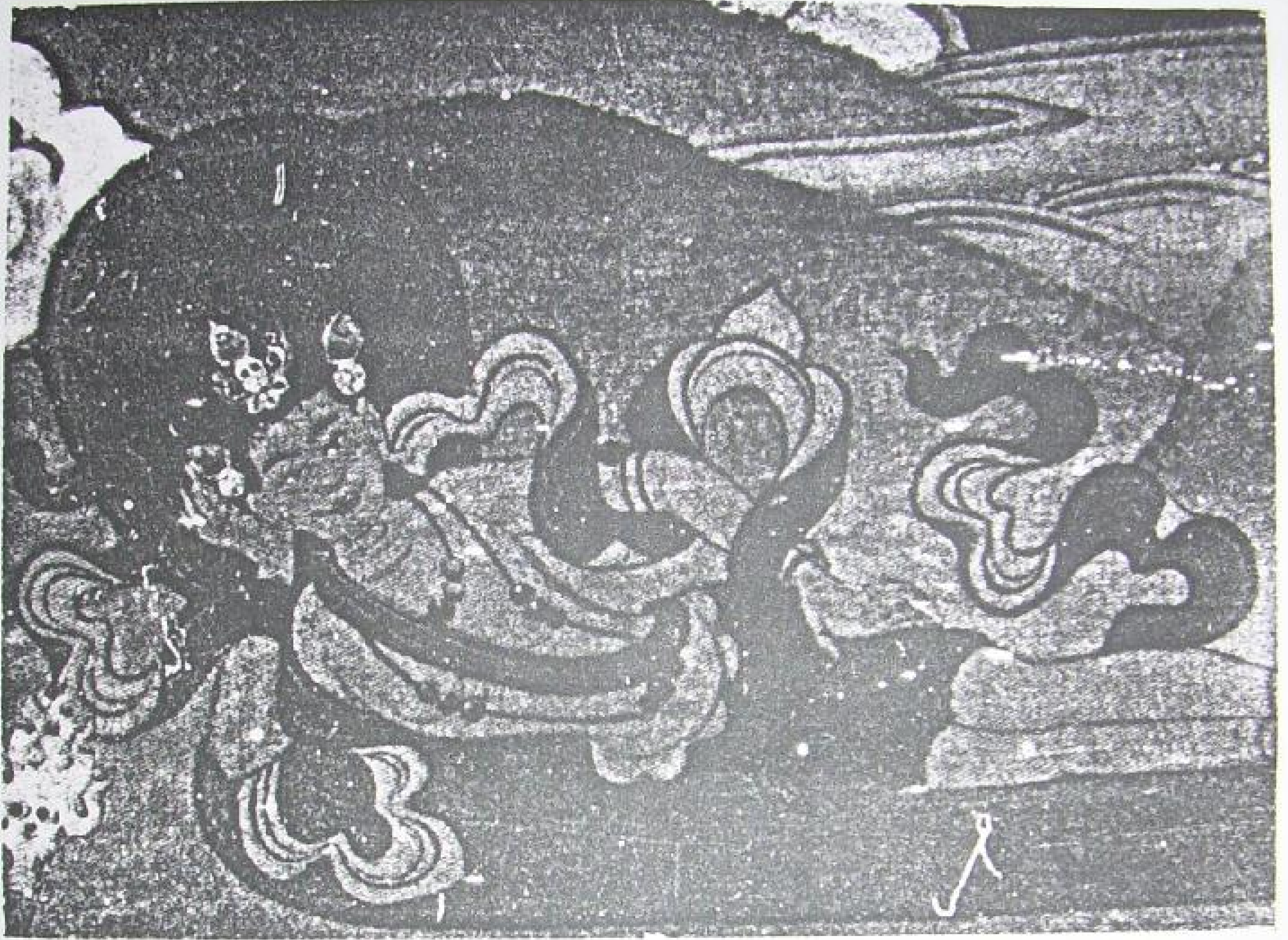
अपरिमित जगत कल्याण के बाद वह खेचर भूमि चले गये।

गुरु धुखन्धि का वृत्तान्त समाप्त



२५. धुखन्तिपा

धुखन्तिपा शमशान में बैठे हुए हैं। बहुत से शमशान के चिथड़े इकट्ठे करके हाथ से सिल रहे हैं। बहुत प्रसन्न मुद्रा में है।



२६. गुरु योगिपा

योगिपा (या अयोगिपा) शमशान में सो रहे हैं अर्थात् लम्बा होकर लेट रहे हैं। लम्बी जटा की शिखा बाँधी हुई है।

२६. गुरु अजोगी का वृत्तान्त

गुरु अजोकि (अजोगी-अयोगी) का अर्थ है, आलस्य वाले, आलसी। इनका जन्म स्थान पाटलिपुत्र था। वहाँ एक गृहपति के पुत्र बहुत अधिक मोटे हो जाने से चारों चर्या (खाना, शौच करना आदि) सो कर ही किया करते थे। उनके माता-पिता एवं सभी सम्बन्धियों ने यह कह कर कि—इस तरह के पुत्र से क्या हो सकता है, अलाप करते हुए उसे श्मशान पहुँचा दिया।

वह श्मशान में सोता रहा, एक दिन वहां एक योगी आये और उस सोये हुए लड़के को देख कर उन्हें बड़ी दया आई। योगी ने नगर से खाना आदि ले आकर उन्हें खिलाया। पर उसे खाना खाते समय में भी नहीं उठते देखकर योगी ने कहा कि—तुम खाना खाते समय में भी नहीं उठ पाते, तो लौकिक कार्यों में कौन सा काम कर पाओगे?

उस व्यक्ति ने कहा—कुछ भी करने में असमर्थ होने के कारण मेरे माता-पिताने मुझे त्याग दिया है।

योगी ने कहा कि—सोते हुए कुछ धर्म कार्य कर सकोगे?

उसने उत्तर दिया कि—कर तो सकता हूँ, परन्तु मेरे जैसे को धर्म उपदेश कौन देगा?

योगी ने कहा कि—मैं देता हूँ। यह कह कर योगी ने उसको 'हेवज्र' के (मण्डल में प्रवेश कराया और) अभिषेक विद्या (तथा) गम्भीर सम्पन्नक्रम का उपदेश दिया और कहा कि ऊर्ध्व द्वार के नासिका अग्रभाग में सरसों के बराबर बिंदु के अन्दर त्रिसहस्र लोक (पूर्ण रूप से) समाविष्ट कर भावना करो।

(उस व्यक्ति) ने पूछा कि—ऐसा करने पर क्या-क्या लक्षण आएगा?

योगी ने कहा कि—अभ्यस्त हो जाने पर समझ में आयेगा। उसने वैसी ही भावना की, तो सरसों (के बराबर बिंदु) एवं त्रिसहस्र लोक, दोनों शून्यता के रस में खो गये और शून्यता, महामुद्रा का ज्ञान प्राप्त हो गया। नौ वर्षों तक इसी की भावना करने पर उन्हें महामुद्रा परमसिद्धि प्राप्त हुई।

अनेक कल्याण के बाद उसी शरीर के साथ वह खेचर भूमि चले गये।

गुरु अजोगी का वृत्तान्त समाप्त

२७. गुरु कलपा का वृत्तान्त

कलपा का अर्थ है मूढ। इनका जन्म स्थान राजपुर था। उनके गुरु एक सुअभ्यस्त सन्तति के योगी थे।

कलपा पूर्व जन्म की शान्ति भावना के फल के रूप में प्राप्त अत्यन्त सुडौल और सुन्दर शरीर के थे। राजपुरी के सभी लोग उन्हें देखने के लिए उनके पीछे पड़ते थे। वह इस घटना से अत्यन्त उद्विग्न होकर एक दिन श्मशान में जा बैठे। एक बड़े निपुण योगी वहाँ आये।

योगी ने कहा कि—तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?

उन्होंने कहा—मुझे (नगर के) सभी लोगों ने (चैन से) रहने नहीं दिया, इसलिए यहाँ आ कर बैठता हूँ।

योगी ने कहा—तुम्हें कोई धर्मोपदेश तो नहीं चाहिये ?

उन्होंने कहा—धर्मोपदेश तो अवश्य ही चाहते हैं, पर मुझे यह कौन देगा ?

योगी ने कहा कि—यदि तुम्हें धर्म की आवश्यकता हो, तो मैं देता हूँ, यह कह कर उन्हें 'चक्रसम्वर' के (मण्डल में प्रवेश करा कर) अभिषेक दिया। दीक्षा दे कर उन्हें 'उत्पत्ति' एवं 'सम्पन्न' क्रम की भावना करने दिया। फलतः उन्हें उत्पत्ति एवं सम्पन्न क्रम का युगनद्ध ज्ञान हो गया और उनके अन्दर स्व और पर के द्वैत भाव का आलम्बन खो गया। तत्व से उत्पन्न मुक्त चर्या का आचरण किया तो राजपुरी के सभी लोग उन्हें मूढ़ कहने लगे।

उन्होंने निम्न दोहा कहा—

आत्म ग्रहण से पर को देखता है, द्वैत भाव से दुःख पैदा होता है,
प्रबुद्ध ऐसा जानने से, विकल्प देव मण्डल।

(एवं) 'अ' अक्षर के अन्दर में ही, आकाश में तिरोहित इन्द्रधनुष सदृश, उत्पन्न, निरोध, स्थिति तीनों, हमसे नहीं मांगे।

सुखी है, अद्वैत बल से सम्भूत चर्या,
सुखी हैं अनिरोध प्रभस्वर ज्ञान;
सुखी अनिरोध छः समूह भावना, सुखी है निराभोग फल की प्राप्ति।

यह कह कर वह आकाश में सात ताल वृक्षों की ऊँचाई तक ऊपर उड़ गये और अनेक परिहार दिखाये।

उनका नाम सर्वत्र 'गुरु कलपा' प्रसिद्ध हो गया। अन्त में वह खेचर भूमि चले गये।

गुरु कलपा का वृत्तान्त समाप्त



२७. गुरुकलकलपा

कलकलपा शमशान में बैठे हुए हैं। रूप रंग के बहुत सुन्दर हैं। हलकी सी जटा-शिखा बाँधे हुए हैं। भावनामूत्र लगाकर समाहित मुद्रा में बैठे हैं। सामने एक स्त्री खड़ी है।



२८. धोवोपा

धोवीपा नदी के समीप बैठे हुए हैं। बहुत से पुराने कपड़े लेकर नदी में धो रहे हैं। बहुत दूर की ओर देख रहे हैं तथा अन्दर से गम्भीर चिन्तन का भाव झलक रहा है।

२८. गुरु धोबिपा का वृत्तान्त

गुरु धोबिपा जाति के धोबी थे, और इनका जन्म स्थान सालिपुत्र नगर (शारिपुत्र नगर) था। इस नगर में एक धोबी और उसके पुत्र दोनों, सदा (कपड़ा) धोने का कार्य करते थे, इसी से वे अपनी जीविका चलाते थे।

एक दिन एक बड़े योगी उनके यहाँ आये और उन दोनों पित्ता-पुत्र से खाना मांगा। उन दोनों ने योगी को खाना खिलाया और पूछा कि 'भन्ते' आपके पास कोई कपड़ा धोना तो नहीं है ? यदि हो, तो हम लोग धो देंगे। योगी ने एक कोयले का टुकड़ा हाथ में उठा कर कहा कि—'इसको धोने पर मल से शुद्ध हो सकते हो।

धोबी के बेटे ने उत्तर दिया कि—कोयला तो स्वभाव से ही काला है, इसे धो कर सफेद नहीं किया जा सकता है।

योगी ने कहा—तुम लोगों ने बाहर के (मल) साफ तो किए, पर अन्दर के तीनों क्लेशों का मल शुद्ध नहीं होता है, तो बाहर के स्नान से शुद्ध होता हो, ऐसा मैं नहीं देखता। अतः सदा स्नान करने की आवश्यकता न हो, एक ही स्नान से शुद्ध हो जाने की दीक्षा मेरे पास है। वह तुम्हें नहीं चाहिए ?

(धोबी-पिता-पुत्र ने) कहा कि (यदि ऐसा हो तो) अवश्य चाहिये। (योगी ने) वहीं श्री चक्रसम्वर के (मण्डल में प्रवेश करा कर) अभिषेक से मन्त्र, मुद्रा और समाधि के द्वारा अधिष्ठित करके उपदेश दिया। (तदनुसार उन्हें साधना में लगाया) साधना करने पर बारह वर्ष के बाद–मुद्रा के द्वारा शारीरिक मल की शुद्धि हो गई। मन्त्र से वाक् मल की शुद्धि हो गयी और समाधि के द्वारा चित्त सम्बन्धी मल की शुद्धि हो गई।

उनका उपदेश इस प्रकार है—

प्रज्वलित मुद्रा जल के द्वारा, शारीरिक मल धोता है
अलि-कलि जल द्वारा ही, वाक् धोया जाता है,
वीर माता पिता के योग से, चित्त मल का समुच्छेद किया। !

इस प्रकार उन्होंने काय 'मुद्रा' 'वाक्' जप और चित्त उत्पत्ति एवं सम्पन्न (क्रम) से अविरल भावना की। फलस्वरूप महामुद्रा परमसिद्धि प्राप्त हो गई। उस समय (पानी में) गन्दे कपड़े छोड़ देने पर बिना धोये विशुद्ध होते सब लोगों ने देखा। लोगों को यह मालूम हुआ कि इन्होंने विशेषता प्राप्त की है।

इनका नाम भी सर्वत्र धोबिपा प्रसिद्ध हो गया। बहुजन हितार्थ साधने के बाद सौ वर्ष की अवस्था में वे उसी शरीर के द्वारा खेचर भूमि गये।

गुरु धोबिपा का वृत्तान्त समाप्त

२९. गुरु कंकन का वृत्तान्त

गुरु कंकन पा का वृत्तान्त इस प्रकार है--इनका जन्म स्थान (सिन्ध) विष्णु नगर था। (जाति के यह क्षत्रिय थे)। इस नगर में एक राजा था जिसकी अपार सम्पत्ति थी एवं जिसका राज्य बहुत सम्पन्न था। काम गुणों के भोग में कोई कमी नहीं थी। वैसे दिन बिताते समय एक दिन एक सुनिपुण योगी उस (राजा) के पास आ पहुँचा और उनसे भिक्षा मांगी। राजा ने उसे बहुत उत्तम भोजन कराया।

(भोजन समाप्ति के बाद उस योगी ने राजा से) कहा कि--हे राजन्। राजश्री निःसार है, भवगत सब कुछ दुःख है। जन्म-मरण पानी की चरखी के समान घूमते है; विभिन्न दुःखों का कोई अन्त नहीं है। स्वर्ग-सुख भी एक परिणाम दुःख है। त्रिस-हस्र चक्रवर्ती राजा भी दुर्गति में उत्पन्न होता देखा जाता है। अतः इस प्रकार के विसंवादक काम-गुण ज़ो तृणों के समान हैं, के प्रति आसक्ति छोड़ कर महाराज धम ग्रहण करें।

राजा ने उत्तर दिया--यदि काम गुणों को बिलकुल न त्यागे कोई धर्म साधना होती हो, तो अवश्य ही करूँगा, अन्यथा सिले वस्त्र, एवं भिक्षा से भोजन पूरा करके मैं जीवित नहीं रह सकूँगा।

योगी ने कहा कि--सिले गए वस्त्र (चिथड़े) और भोजन भिक्षा पर निर्भर हो बहुत उत्तम सेवा है। अतः आपको भी इसका सेवन करना होगा।

राजा ने कहा--सिलाए गये वस्त्र, खाने का बर्तन, कपाल और (लोगों के द्वारा प्रदत्त) बासी खाने से बहुत घृणा आती है। यह हम से संभव नहीं है।

योगी ने कहा -तुम इस तरह का अभिमान और राज कार्य करोगे तो अन्त में दुर्गति का दुःख भोगना (ही) पड़ेगा। मुझे सिले वस्त्र (चिथड़े) बासी खाने और कपाल का पात्र ग्रहण कर घूमने पर भी फल अनास्रव-सुख की प्राप्ति होगी। अतः हम दोनों का राज्य बहुत भिन्न है। फिर भी काम भोग बिना त्यागे धर्म साधना (मेरे पास) अवश्य है।

राजा ने कहा--मैं अवश्य ही धर्म ग्रहण करूँगा, आप दें।

तत्पश्चात् योगी ने—राजा से कहा हे राजन्! तुम अपने हाथ के प्रज्वलित रत्न कंकण के प्रति आसक्ति और अभिमान त्याग दो। प्रज्वलित रत्न की प्रभा एवं निरासक्त चित्त दोनों को एक करके (अद्वय भाव से) भावना करो।

(इस सम्बन्ध में कहा दोहा निम्न प्रकार है)—

कंकन सुप्रज्वलित प्रभा देख अपना चित्त भी सुखी,
बाह्य नाना प्रत्येक आदि से अनेक वर्ण आ भी जाय।
परिणामित नहीं होता तत्स्वभाव तत्सदृश नाम आभासी,
विकल्पस्मृति आ भी जाय चित्त प्रज्वलित रत्नवत्।



२९, गुरुकंकनपा

कंकनपा अपने हाथ के कंकन को देख रहे हैं। इसी पर उनकी समाधि लगी है। हलके अलङ्कार एवं भावना सूत्र धारण किये हुए हैं। सामने आकाश की ओर से कुछ देवी देवता उनकी पूजा कर रहे हैं।



३०. कंबलपा

कम्बलपा भिक्षु के वेश में हैं। ये पत्थर की चट्टान के बीच गुफा के अन्दर समाहित मुद्रा में बैठे हुए हैं।

इस देशना के बाद, राजा ने दक्षिण हाथ (दाहिने हाथ) के कंकण (जो प्रज्व-लित रत्न जटित सुवर्ण का बना हुआ था) को आलम्बन बनाकर उसी में चित्त लगा कर भावना की। छः महीने में ही उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई।

एक दिन उनके नौकरों ने बन्द दरवाजे के छिद्र से देखा, तो उन्हें (अन्दर) अनेक देवनारियों से परिवृत देख कर सब लोग अचंभित हो गये। (अन्दर जा कर उनसे) उपदेश के लिए प्रार्थना की, तो उन्होंने (राजा ने) अपने मुख से कहा— निम्न दोहा—

चित्त ज्ञान ही राजा है, महासुख राज्य है,
युगनद्ध परिभोग है, राजेच्छित वैसा ही करो।

उसके बाद वे अपने परिवार और विष्णु नगर के (बहुत से) नागरिकों को साथ लेकर पाँच सौ वर्ष की अवस्था में उसी शरीर के साथ खेचर भूमि चले गये। उनका नाम सर्वत्र कंकनपा प्रसिद्ध हो गया।

गुरु कंकनपा का वृत्तान्त समाप्त

३०. गुरु कम्बलपा का वृत्तान्त

कम्बल पा का जन्म स्थान 'ककरम' (कांगड़ा-या कंगढ़) था।

वे जाति के राजपूत थे। उनकी गुरु उनकी जन्म दाता मां थीं और इष्ट देव श्री महासुख अथवा चक्रसम्वर।

ककरम प्रदेश में एक राजा राज करते थे। और वह अस्सी लाख जनसंख्या के जनपद पर राज्य करते थे। उनके दो पुत्र थे। पिता का देहान्त होने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र को वहाँ की जनता ने राजगद्दी पर बैठा कर राज्याभिषेक कराया, क्योंकि वे बहुत भद्र स्वभाव के थे।

उनके पुण्य (सौभाग्य) से जनता बड़ी सुखी और धन-धान्य से परिपूर्ण थी। वह सोना (चांदी) आदि के बर्तन खाने पीने के लिए उपयोग किया करते थे।

राजपुत्र के राजगद्दी पर बैठे छः महीना बीते, पर उनकी मां से उनकी भेंट नहीं हुई। एक दिन उन्होंने पूछा कि मेरी मां कहाँ गई? यहाँ क्यों नहीं आती? (लोगों ने उत्तर दिया कि) मां पिताजी के देहावसान से दुःखी हो कर बैठी हैं, इसलिये वह यहाँ नहीं आई हैं।

एक वर्ष के बाद मां उनके पास आई और रोने लगी।

राजा ने पूछा कि हे मां! आप क्यों रो रही हैं?

मां ने कहा--तुम रत्न सिंहासन पर बैठ कर राज कर रहे हो? यह देख कर मुझे बड़ा दुःख हुआ इसलिए रो रही हूँ।

राजा ने कहा--यदि मां इससे अप्रसन्न हो, तो छोटे भाई को राज्य सौंप कर मैं परिव्राजक बन जाऊँ।

मां ने उत्तर दिया कि--यह तो उचित ही है।

उन्होंने अपने छोटे भाई को राज सौंप दिया और स्वयं घर छोड़ परिव्राजक हो गये। वे तीन सौ भिक्षु शिष्यों के साथ एक विहार में रहने लगे। पुनः उनकी मां वहीं आ कर रोने लगीं। फिर पुत्र ने मां के चरणों में प्रणाम कर कारण पूछा कि--हे मां! आप क्यों रो रही हैं?

(मां ने उत्तर दिया कि) तुम परिव्राजक भिक्षु हो कर भी राजा की तरह से परिवार और सभा संघ के अन्दर विराजमान हो, यह देख कर मुझे बड़ा दुःख हुआ, इसलिए रो रही हूँ।

पुत्र ने फिर भी मां से पूछा कि—फिर क्या करूँ?

मां ने कहा कि--संघ सभा त्याग कर विरक्ति की जगह में बैठो।

वह विहार त्याग कर शून्य जगह पर एक वृक्ष के मूल में बैठे, पर पुण्य से सम्बन्धित्त खाना पीना आदि बहुत मात्रा में प्राप्त होता रहा।

पुनः उनकी मां वहाँ आई और उन्हें देख कर रोने लगी।

पुत्र ने मां के चरण में प्रणाम किया और पूछा कि अब क्या करूँ ?

मां ने कहा कि--परिव्राजक भिक्षु के लिये अतिरिक्त व्यर्थ जीविका सामग्री रख कर क्या करोगे ?

उन्होंने चीवर-पात्र सब वहीं छोड़कर योगी का रूप धारण किया और अन्य प्रदेश चले गये।

(वास्तव में) उनकी मां एक डाकिनी थीं, वह जाते समय एक रास्ते में पुनः आ मिलीं। उसी रास्ते में अपने पुत्र को श्री चक्रसँवर (के मण्डल में प्रवेश कराकर) अभिषेक दिया और धर्म-उपदेश दिया। तदनुसार पुत्र (दीक्षा पाकर) श्मशान में भट्टी के अन्दर सोते साधना करते रहे। बारह वर्ष के उपरान्त महामुद्रा परम सिद्धि प्राप्त हो कर आकाश में उड़ते हुए वहाँ से निकले, तो पुनः उनकी मां अनेक डाकिनियों के साथ आ कर अपने पुत्र से बोली--

तुम्हारे सत्वार्थ (जगत् कल्याण) छोड़ कर आकाश मार्ग से जाने में कौन सी आश्चर्य की बात है ? ऐसा पक्षी भी कर सकते हैं। जगत् कल्याण का काम करो।

वह पश्चिमी (भारत) उद्यान (उज्जैन) में मालापुर (मालपुर) नामक प्रदेश में ढाई लाख अवधि के नगर में गए। (उस नगर के एक कोने में) 'करवीर' नामक गांव के प्रणवशील नामक एकान्त स्थान में 'तलचि' गुफ़ा नामक एक गुफा थी। वहीं बैठ कर उन्होंने साधना करना आरम्भ किया। यह बात वहाँ की (बहुत सी चुड़ैल रहती थीं) उन लोगों ने जान लिया। एक चुड़ैल पद्म देवी नामक चुड़ैलों की प्रधान थी। उसे इस घटना की जानकारी दी। वह आचार्य को विघ्न डालने के लिए अनेक सहेलियों के साथ वहाँ साधना में आई।

उस समय आचार्य एक काला कम्बल ओढ़ कर नगर में भिक्षाटन करने जा रहे थे। रास्ते में चुड़ैल लड़कियों के एक झुण्ड से उनकी भेंट हुई।

उन लोगों ने आचार्य से कहा कि—आपको हमलोग भोजन दान करेंगी, अतः आप हमारे घर पधारें।

आचार्य ने उत्तर दिया--मैं एक घर से भोजन नहीं करता। अतः भिक्षाटन करूँगा। यह कह कर पद्मदेवी आदि के पास अपना कम्बल रख कर भिक्षाटन करने गये, तो चुड़ैलों ने एक दूसरे से परामर्श करके यह तय किया कि इस वस्तु में कुछ शक्ति होगी अतः इसे खा लिया जाय। सब लोगों ने उस (कम्बल को) खाया और जो बचा वह आग में जला दिया।

जब आचार्य लौट कर आये, चुड़ैलों से कहा कि 'मेरा कम्बल कहाँ है ? दो।' पद्मदेवी ने एक अन्य कम्बल दिया। आचार्य ने कहा कि--'मुझे तो मेरा अपना कम्बल चाहिए।' यह कह कर उसको नहीं लिया। चुड़ैल ने सोना धातु से निर्मित और एक कम्बल दिया तो उन्होंने उसे भी लेने से इनकार किया।

आचार्य ने वहाँ के राजा के पास जा कर शिकायत की कि तुम राजा हो, यहाँ चोरों की भरमार है।

राजा ने पूछा कि—'चोरों ने किसका क्या लूटा ?'

आचार्य ने कहा 'तुम्हारी चुड़ैलों ने मेरा कम्बल ले लिया।'

राजा ने सभी चुड़ैलों को बुला कर कहा कि 'तुम लोग इस योगी का कम्बल लौटाओ।' चुड़ैलों ने एक-एक सब लोगों ने मेरे पास नहीं है, कह कर, कम्बल नहीं लौटाया।

आचार्य वहाँ से चले और 'तलचि' गुफा में लौट कर साधना करते रहे। उन्होंने 'दश महाक्रोध' को बलि दी, तो चुड़ैलों के एक दल ने उस गुफा का पानी सुखा दिया। आचार्य ने पृथ्वी देवी को आदेश 'दिया पानी निकालो!' तो भूमि से पानी निकला। वहाँ की सभी चुड़ैलों ने एकत्र होकर चार द्वीप (समुद्र पर्वत) सुमेरु पर्वत आदि में रहने वाली सभी चुड़ैलों को भी वहाँ आने की सूचना दी। वे सब आईं और आचार्यको विघ्न डालने की चेष्टा की तो आचार्य ने उन सब लोगों को भेड़ें बना दिया। राजा आदि सब भेड़ बन गए और सब लोग आश्चर्यचकित हो गये। आचार्य से (ऐसा न करने के लिये लोगों ने प्रार्थना की। आचार्य ने सभी भेड़ों के सिर के बाल छोल कर छोड़े, तो सब स्त्रियाँ (जो चुड़ैल थीं) नंगे सिर (अपने सिर में बाल न देख कर) रोने लगीं।

आचार्य उसी तलचि गुफा में बैठे रहे। एक काम-धातु के देवों ने गुफा की चट्टान गिरा कर आचार्य को मारने की चेष्टा की। आचार्य ने गिर रहे चट्टान को तर्जनी निर्देश किया, तो चट्टान ऊपर लौट कर आकाश में लटक गई जो अभी भी विद्यमान है।

वहाँ के राजा ने कहा कि—इतनी चुड़ैल एकत्र होकर भी एक आदमी का सामना नहीं कर पाईं यह क्या हो गया? अब सब लोग उनसे क्षमा याचना करो और उनसे प्रतिज्ञा लेकर उ।का पालन करो? पर लोगों ने इनकी बात नहीं सुनी। आचार्य ने उन लोगों को एक पंक्ति निबद्ध कर कहा कि तुम लोगों को या तो यम-राज को सौंप दूँगा या मेरे शासन में प्रवेश लेकर प्रतिज्ञबद्ध रूप से नहीं रहोगी तो (सब लोगों को) घोड़ा बना कर ले जाऊंगा। आचार्य की शक्ति से भयभीत होकर सभी चुड़ैलों ने 'त्रिशरण' ली और आचार्य ने उन्हें प्रतिबद्ध कर दिया।

तत्पश्चात् चुडैलों ने आचार्य का वह कम्बल (जो उन लोगों ने पहले खा लिया था) उलटी कर निकाला। आचार्य ने सभी (कम्बल के) टुकड़ों को जोड़ा, तो पहले की अपेक्षा थोड़ा छोटा हुआ (क्योंकि कम्बल का कुछ अंश उन लोगों ने आग में जला दिया था)। पुनः उसी कम्बल को ओढ़ कर वह चल दिये, तो सब लोगों ने 'कम्बलपा' कहना आरम्भ कर दिया। उनका नाम 'कम्बलपा' प्रसिद्ध हो गया। उनका दूसरा नाम 'श्रीप्रभात' भी कहा जाता है।

अनेक वर्षों तक जगदर्थ कर अन्त में इसी शरीर के साथ वह खेचर भूमि चले गये।

गुरु कम्बलपा का वृत्तान्त समाप्त

३१. गुरु डिङ्गिपा का वृत्तान्त

गुरु डिङ्गिपा, जाति के ब्राह्मण थे, जन्मस्थान शालिपुत्र[१] था। वह शालिपुत्र के राजा 'इन्द्रपाल[२]' के मन्त्री थे। राजा के मन में सांसारिक धर्मों के प्रति संवेग हुआ[३]। अपने मन्त्री को साथ लेकर वह उस श्मशान चले, जहाँ लूहिपा विराजमान थे। उस स्थान पर पहुंचने पर (लूहिपा के कुटीर में जाकर उनका) दरवाजा खट-खटाया। आचार्य ने पूछा कि—कौन हो ?

लोगों ने कहा—मैं राजा और यह मन्त्री हैं।

आचार्य ने कहा—अन्दर आओ। (अन्दर गये) आचार्य ने उन दोनों को श्री चक्रसंवर (के मण्डल में प्रवेश करा) के अभिषेक दिया[४]। अभिषेक की दक्षिणा[५] के रूप में उन दोनों ने अपने-अपने शरीर अर्पित कर दिये। (तीनों लोग वहाँ से) अन्य प्रदेश 'ओदोश' (नामक स्थान) चले गये। वहाँ तीनों आचार्य भिक्षाटन करते रहे उसके बाद राजा को बेच दिया गया (इसका वृत्तान्त दारिकपा के प्रसंग में है)।

आचार्य लूहिपा और मन्त्री ब्राह्मण जयन्तपुर में जाकर एक बौद्ध राजा के पास एक सप्ताह तक बैठे। उसके बाद उसे (मन्त्री को) तौल कर बेच दिया (इसका वृत्तान्त इस प्रकार है)—

वे दोनों (वहाँ से) एक मदिरा बेचने वाली के पास गये। मदिरा बेचने वाली प्रधान का दरवाजा खोज कर दोनों वहाँ पहुँचे और (कहा कि तुम्हारी प्रधान आदमी नहीं खरीदना चाहेगी)। (द्वारपालिका ने) उस अन्दर जाकर अपनी स्वामिनी से पूछा, तो उसने उत्तर दिया कि—हाँ, साथ यह भी पूछा कि दाम क्या लोगे ? आचार्य ने कहा कि तीन सौ तोला सोना चाहिये। उसने भी उतना ही देकर (उस मन्त्री को

---

१ कुन खेनपद्कर के अनुसार इस जगह का नाम या उनके जन्मस्थान का नाम कुमारक्षेत्र (तिब्बती अनुवाद में कुमारी क्षेत्र) था, जो दक्षिण भारत के समीपतम ओडिविषय (ओडिविष्टि का विशेष नगर है। (पद् ई० पृ० ७५)

२ यह राजा विमलचन्द्र का मन्त्री था। (पद० वही)

३ राजा के मत में संवेग उत्पन्न होने से पहले एक विशेष घटना घटी—वह यह कि राजा की राजधानी में 'कुमुद पुष्प-उत्सव' होता था उस समय राजा बड़े सज-धज के साथ अपने उद्यान में जाया करता था। इस उपक्रम में राजा ने उद्यान में राजगद्दी सजा रखी था, आचार्य लुहिपा जाकर उस पर बैठ गये इत्यादि। (तद् कर० इ० पृ० ७५—७८)

५ कुन खेन पद् कर के अनुसार यह वहीं राजमहल में ही दिया (३० पद-ई० पृ० ७६-७७)

६ दीक्षा के समय उनसे यह पूछा गया कि तुम ब्राह्मण हो, ब्राह्मण शुद्धता एवं जाति के बड़े प्रेमी होते हैं। हम योगी लोग मांस खाते हैं, मदिरा पीते हैं, तो मेरे प्रति श्रद्धा हो सकती है ? मन्त्री ने श्रद्धावान होने का प्रमाण दिया—फिर दीक्षा हुई। (पद० ई० पृ० ६७-७७)

खरीद लिया)। (पर आचार्य ने उस ब्राह्मण को देते समय एक शर्त लगाई कि) इनको दीवार के पास सोने दो और तुम्हारे सोने का दाम पूरा हो जाने पर इनको वापस भेज देना। यह कह कर आचार्य वहाँ से चले गये।

उस ब्राह्मण (मन्त्री) ने मदिरा बेचने वाली के यहाँ बहुत अच्छा काम किया और सब लोग उसको स्वामी जी कहने लगे। एक दिन दिन भर काम किया और सन्ध्या काल में खाने की प्रतीक्षा न कर रात को उद्यान चले गये। मदिरा बेचने वाली प्रधान को रात में यह स्मरण आया कि उनको खाना नहीं दिया गया, उसने, उनका खाना वहीं पहुँचाने के लिए भेजा। (भोजन) लेकर एक नौकरानी उद्यान में पहुँची तो वहाँ क्या देखती है कि वहाँ पन्द्रह देवपुत्रियाँ ब्राह्मण पुत्र का लाभ-सत्कार कर रही हैं और वे अपने शरीर के प्रकाश में बैठे हुए हैं। (यह दृश्य देख कर वह नौकरानी वहाँ से लौट गई और) इस घटना को जाकर अपनी स्वामिनी से कह सुनाया। उससे उनको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। आचार्य ने (ब्राह्मण) से निवेदन किया कि आपसे हम लोगों ने बारह वर्षों तक अपने नौकर के रूप में रख कर काम लिया। हमें इसका पाप है। इसके प्रायश्चित के लिये अब बारह वर्ष तक आप हमारा पुरोहितत्व (गुरु का रूप) स्वीकार करें, हम आपकी सेवा करेंगी। पर आचार्य ने उसे स्वीकार नहीं किया।

मदिरा बेचने वाली प्रमुख सहित जयन्तपुरी के सभी प्रकार के लोगों को उन्होंने बहुत से धर्मोपदेश और दीक्षा दिए। अन्त में सात सौ शिष्य परिवार के साथ वह खेचर भूमि चले गये (जब वह मदिराशाला में काम करते थे, उस समय मुख्य रूप से) धान कूटने का ही काम करते थे, इसलिए उनका नाम भी 'डिङ्गिपा' पड़ा। उनका दोहा निम्न प्रकार है—

वेद पाठक डिङ्गिपा धान कूटक ध्यानों हो
ओखरी में धान कूटते हैं, छांटने के चित्त से बिखरा संग्रहता है।
गुरु उपदेश से धान कूटता हूँ, अन्य काम बिना किये।
कृष्ण धान ही कूटता हूँ, प्रथमतः कुशलेन पाप कूटता हूँ।
प्रतिसंविद बज्र हथौड़ा है, (उसका)[१] प्रकाश सूर्य चन्द्रमा हैं।
शून्य धर्मता की ओखरी में, सेयोपदेयता के अद्वैतभाव से कूटता हूँ।
'हूँ' शब्द से विकल्प के दधि मथ कर, महासुख नवनीत का सर्जन हुआ है,
(उससे) अद्वैत रस की अनुभूति हुई है।

यहाँ डिङ्गिपा के मदिराशाला में बेचे जाने का प्रयोजन ब्राह्मण होने के नाते उनमें जाति-अभिमान-विकल्प की प्रबलता थी। जाति महत्ता का विकल्प मदिरा

---

१ भोट भाषा में (ओद् सेर्०) शब्द है, उसका हिन्दी रूप प्रकाश प्रभाव, प्रयास होता है; यहाँ 'प्रभाव' अर्थ है, पर शब्द प्रकाश ही है।

बेचने (के कार्य) से क्षीण हो जाता है। अतः जाति अभिमान त्यागने के लिये (उनको) वहाँ बेचा गया।

गुरु डिङ्गिपा[1] का वृत्तान्त समाप्त

१ इन के लिये 'डिंगिपा' का नामकरण इस लिये हुआ कि—जब राजा और मन्त्री दोनों अभिषेक एवं दीक्षा लेकर आचार्य के पास उपदेश के लिये बैठे थे, तो आचार्य ने मन्त्री से प्रश्न किया कि इस समय तुम्हारे मन में सब से अधिक स्पष्ट प्रतीति किस विषय की है? ब्राह्मणमन्त्री ने उत्तर दिया—'डिङ्ग' (मुसल, जिसके द्वारा धान कूटा जाता है) के शब्द का आचार्य ने उस डिङ्ग (मुसल) के शब्द को ही आधार बतला कर शून्य धर्मता की देशना दी। तदनुसार उन्हें सिद्धि का लाभ हुआ। इसलिये उन्हें डिङ्गि कहा गया, पा शब्द आदर सूचक है (द्र० पद्० इ० पृ० ७७)।

३२. गुरु मन्धेपा का वृत्तान्त

गुरु मन्धेपा का वृत्तान्त इस प्रकार है मन्धे का अर्थ है—'धनदेवघर' इनका जन्मस्थान श्रावस्ती था और जाति के यह देवयोनि के थे। उनके गुरु आचार्य कृष्णाचार्य थे।

मन्घेपा आकाश में रहने वाले थे। एक समय एक आर्य-अर्हत चीवर-पात्र और दण्ड लेकर सप्रकाश आकाशमार्ग से जा रहे थे। यह देख कर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने देव कारीगर विश्वकर्मा से पूछा कि—हे स्वामी-सुत। इस प्रकार का अद्भुत व्यक्ति आकाश में उड़ते जाने वाला, यह क्या है ?

विश्वकर्मा ने कहा—यह क्लेशों को प्रहीण किये हुए आर्य-अर्हत कहे जाने वाले हैं। इसे सुन कर मन्धेपा को इसकी (अर्हतत्व) प्राप्ति की बड़ी इच्छा हुई।

मन्घेपा ने पुनः जम्बुद्वीप में आकर आचार्य कृष्णपा से धर्मोपदेश (एवं दीक्षा) के लिये प्रार्थना की। कृष्णपा ने उन्हें गुह्य समाज (मण्डल में प्रवेश करा कर) अभिषेक दिया। योग-रक्षण के उपाय चार अप्रमाण का उपदेश इस प्रकार दिए—

करुणा दृष्टि (दर्शन), मुदिता-भावना, मैत्रीचर्या और उपेक्षा फल के रूप में भावना हो। ऐसा ही किया, तो विपरीत भ्रान्तियों का सभी मल-विशुद्ध हो गया और उन्हें 'महामुद्रा परकसिद्धि' का लाभ हो गया। उनका नाम सर्वत्र मन्घेपा प्रसिद्ध होने लगा।

विश्वकर्मा ने उनसे पूछा कि आपने क्या कर लिया है ? उन्होंने (निम्न) दोहा कहे—

निरालम्बन दर्शन, निरन्तर्य भावना,
माता पिता सदृश चर्या आकाश समानफल ये चार।
अभिन्न रूपसे अभ्याप्त है, अभिनिवेश कहाँ से होगा ?
अहो ! गुरु अद्भुत है, पण्डित सदा सेव्य है।

श्रावस्ती आदि छः जनपदों में चार सौ वर्ष तक अपरिमित जगतार्थ करने के बाद चार सौ शिष्य परिवार के साथ उसी शरीर द्वारा वह खेचर भूमि चले गये।

गुरु मन्घेपा का वृत्तान्त समाप्त

३३. गुरु तन्तिपा का वृत्तान्त

'तन्तिपा' का अर्थ जुआ खेलने वाला है। इनका जन्म स्थान कोशम्भि था और जाति के यह शूद्र थे।

कोशम्भि जनपद में शूद्र जाति के व्यक्ति सदा जुआ ही खेलते रहते थे। अन्त में इनका सभी धन समाप्त हो गया, फिर भी आदत हो जाने से पुनः जुआ खेलने लगे। बाजी हार जाने के बाद उनके पास देने के लिये कुछ नहीं रह गया, तो लोगों ने उन्हें पीटना शुरू कर दिया। इससे बड़े दुःखी होकर वह श्मशान में जा बैठे। एक योगी वहाँ आये और उनसे मिले। पूछा कि तुम यहाँ क्या कर रहे हो?

उन्होंने उत्तर दिया—जुआ खेलना मुझे बहुत अच्छा लगता था और जुआ खेलने की आदत बन गई जिसके कारण मेरी सभी सम्पत्ति उसी में चली गई अतः अब मैं काय और चित्त दोनों दुःखों से पीड़ित होकर यहाँ आ बैठा हूँ।

योगी ने कहा कि तुम धर्म ग्रहण नहीं करोगे?

उसने उत्तर दिया कि—मैं जुआ खेलना नहीं छोड़ सकता, यदि बिना जुआ छोड़े कोई धर्म होता हो, तो अवश्य करूँगा, और वही हमें दें।

योगी ने कहा—हाँ, मेरे पास वैसा धर्म है। यह कह कर उन्होंने उसे अभिषेक दिया और यह उपदेश दिया—

जैसे जुआ से तुम्हारे धन द्रव्य क्षीण होकर समाप्त हो गये, वैसी ही समस्त त्रिधातु-शून्यता की भावना करो। जैसे त्रिधातुक शून्य है, वैसा ही चित्त (अपने चित्त) के भी शून्यता की भावना करो।

दोहा—

जैसे जुआ से सभी धन का क्षय हुआ, ज्ञान जुआ से त्रिधातुक के
समस्त विकल्प का क्षय करो, जैसे उससे आत्म पीड़ित हुआ।
वैसा ही विकल्प को धर्म में पीड़ा दो, जैसा विरक्त श्मशान में सोते हैं।
वैसे ही महासुख के गर्भ में सो जाय।

इस प्रकार जैसे निर्देश दिया वैसी ही उसने भावना की। फलतः त्रिधातुक विकल्प धर्मता में वह लीन हो गये। उस तरह के ज्ञान से स्वयं भी निःस्वभाव होकर 'महामुद्रा परमसिद्धि' को वह प्राप्त हुए।

उन्होंने (अपना अनुभव) कहा—

प्रथम संवेग[1] उत्पादन होता, तो मोक्षमार्ग में प्रवेश कहाँ होता?

श्रद्धा से गुरु का सेवन न करे, तो परमसिद्धि कहाँ से आए।

यह कह कर आकाश में ऊपर उड़े और उसी शरीर के द्वारा वह खेचर भूमि चले गये।

गुरु तन्तिपा का वृत्तान्त समाप्त

---

१ 'संवेग' 'विराग' का प्रथम चरण माना जाता है।

३४. गुरु कुक्कुरिपा का वृत्तान्त

गुरु कुकुरिपा का[१] जन्म स्थान कपिलवस्तु (कविल-स-कुन) था, जाति के यह ब्राह्मण थे[२]।

कपिलवस्तु के एक ब्राह्मण को तन्त्र के प्रति श्रद्धा हुई। योगी की चर्या करते हुए क्रमशः लुम्बिनी नगर जाते रास्ते में एक कुतिया अपने से उठ पाने में असमर्थ देखकर उसके प्रति मन में अपार मैत्री पैदा हुई। उस कुतिया को लेकर नगर में पहुँचे और चारो ओर देखा, तो एक ओर एक खाली गुफा दिखाई दी। उसी में उसे रखा। भिक्षाटन करते उसी गुफा में अपनी साधना करते रहे। बारह बर्ष के बाद लौकिक सिद्धि 'अभिज्ञा' आदि की उन्हें प्राप्ति हुई।

उसके बाद त्रयस्त्रिशत् देवताओं के निमंत्रण पर वे त्रयस्त्रिशत गये। पर कूकरी वहीं रह गई। आदमी के अभाव में कुत्ते ने भूमि खोदी और पानी कीचड़ आदि निकला तो उसी को खाती रही। योगी की देवताओं ने विस्तृत भाव्य पूजा की। पर योगी को कुत्ते की याद आई। और वे वहाँ से लौटने की तैयारी करने लगे।

देवताओं ने उनसे कहा—आपको इतने गुण प्राप्त हो गये पर कुत्ते का विकल्प क्या इतना भी नहीं छूट सका ? यह अच्छा नहीं हुआ। आप यहीं बैठें। इस प्रकार उनको रोक दिया गया। एक समय (देवताओं के मना करने पर भी उन्होंने नहीं सुना और उस गुफा में वापस लौट आये। कूकरी को देखकर उस पर हाथ फेरा, तो वह एक डाकिनी के रूप में परिणत हो गई। उसके मुख से ये शब्द निकले—

साधु-साधु कुल-पुत्र, विघ्न के वश नहीं हुये तुम,
परमसिद्धि लेने आये, पूर्वसिद्धि मिथ्या है।

विपरीत दृष्टियों में भी है, अद्भुत नहीं परिणामित है,
अनास्रव महासुख धर्मता को, परमसिद्धि देती हूँ।

(यह कहकर) प्रज्ञोपाय युगल के संकेत दिखलाया, फलतः अपरिवर्तनीय और

---

१ कुकुराजा, कुताराजा, आदि नाम भी है (दुजोम-बिङमा इ० पृ० ८९)।

२ कुन खेनपद् करके अनुसार—इनका जन्म-स्थान वाराणसी के पूर्व भाग में सुवर्णकुंड (भोट भाषा में 'थ्रे' शब्द है) है। ये सरह के छोटे भाई थे। इनका बचपन का नाम उद्भटस्वामी था, राहुल नामक उपाध्याय से उपसंपदा लेकर (भिक्षु बने) भिक्षु का नाम वीर्यभद्र था। उसी उपाध्याय से मन्त्रयान साधना की दीक्षा लेकर बुद्ध गया में साधना करते रहे। वहाँ उनका नाम 'त्यागिपा' प्रसिद्ध हो गया। वहाँ वे दिन में एक सौ कुतियों के बीच में रहते थे और रात में उनके साथ गण-चक्र का उपक्रम किया करते थे। इस कारण उनका नाम 'कुकुरिपा' पड़ा(पद्कर—इ०पृ०७२-७३)।

अविपरीत दृष्टि प्राप्त होकर परम सिद्धि का योगी को लाभ हुआ।[1] उसके बाद लुम्बिनी[2] आदि सर्वत्र उनका नाम गुरु कुकुरिपा प्रसिद्ध हो गया।

अन्त में अनेक जगतार्थ के बाद कपिल कु (कपिलवस्तु) के बहुत से जन समुदाय को लेकर उसी शरीर द्वारा वह खेचर भूमि चले गये।

गुरु कुकुरिपा का वृत्तान्त समाप्त

---

१ बहुत से वृत्तान्तों के अनुसार कुकुरिपा ने 'सर्वबुद्ध समायोग तत्त्व' एवं 'गुह्यचन्द्रबिन्दु' नामक योग तन्त्र की साधना से परमसिद्धि का लाभ किया (दुजोम् ई० पृ० ४२, कलिमपोङ् संस्करण)।

२ तारानाथ बुस्तोन एवं दुजोम की कृतियों में 'लुम्बिनी' की जगह गया [बुद्धगया] या 'वज्रासन' ही लिखा है। (दुजोम इ० पृ० ४१-४२)। बुस्तोन ने उनका कार्य-क्षेत्र मध्यदेश का मालव [मालवा] कहा है ('योगप्रवेश—पृ० १६। 'द' पुट, B. N. ६७)।

३५. गुरु कुचिपा का वृत्तान्त

कुचिपा का अर्थ कुबड़ा है। इनका जन्म स्थान 'कहरि' नामक स्थान था। जाति के वह शूद्र थे।

कहरि नामक स्थान में शूद्र जाति का एक व्यक्ति कृषि से अपनी जीविका चला रहा था। एक समय अपने पूर्व कर्म वश उसकी गर्दन के पीछे एक मांस का टुकड़ा 'कुचि' सूज कर उभर आया। उसके बहुत बढ़ जाने के कारण उसके लिये चलना फिरना भी कठिन हो गया। कूबड़ से दुःखी होकर वह एक एकान्त जगह में जाकर बैठा।

एक समय वहाँ आचार्य नागार्जुन आ पहुँचे। आचार्य को देख उस आदमी के मन में अपार श्रद्धा उत्पन्न हुई और अंजलिवद्ध करके उनके सामने बैठकर उसने कहा—'अहो आर्य ? आप कहाँ से आये ? मैं तो कुकर्म से पीड़ित हूं। इस प्रकार के असह्य दुःख में हूँ। इससे मुक्त होने का एक उपाय आप मुझे दें।'

आचार्य ने उत्तर दिया—इससे मुक्त होने का उपाय तो है, आप उद्यमपूर्वक उसकी साधना कर पाएँगे ? यदि सक्षम हों, तो समस्त दुःखों का मूल उच्छिन्न करके सुख की स्थिति प्राप्त करने का उपाय अवश्य है।

उसने कहा—आर्य, उद्यम से साधना क्यों नहीं कर सकेंगे, अवश्य कर सकेंगे।

आचार्य ने उसे गुह्य समाज (मण्डल में) अभिषेक दिया। दुःख को मार्ग के रूप में परिणत करने के उपाय उत्पत्ति एवं सम्पन्न (क्रम) की देशना दी। वह इस प्रकार है—

'उत्पत्ति क्रम के अनुसार आलम्बन आचार्य ने उनसे कहा—'तुम अपनी गर्दन के पीछे के कुचि (मांस का टुकड़ा) को क्रमशः बढ़ते हुए भावना करो।' उसने वैसा ही किया। फलतः कुचि बहुत बढ़ गया और दुःख पीड़ा भी पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गई। पुनः एक दिन आचार्य ने वहाँ आकर उनसे पूछा कि 'क्या अच्छा हुआ ?'

उसने उत्तर दिया कि नहीं, अत्यधिक पीड़ा बढ़ रही है।

आचार्य ने सम्पन्न क्रम के आलम्बन अनुसार उससे कहा कि समस्त धर्म (ज्ञेय-वस्तु] उसी के अन्दर संगृहीत होता हुआ है—ऐसी भावना करो। उस व्यक्ति ने वैसा ही किया। फलतः उसकी वह [भयंकर] कुचि समाप्त हो गयी। वह सुख से विहार करने लगे। पुनः आचार्य वहाँ आ पहुँचे और उनसे पूर्ववत् अच्छा है ? यह पूछा। उसने उत्तर दिया कि—'जी हाँ, बहुत अच्छा हो गया।

आचार्य ने उन्हें उपदेश दिया कि—

'सत्-असत् से सुखी-दुःखी हुआ करता है, जो अन्त-द्वय से विरह हो जाता है, उसमें सुख एवं दुःख कहाँ से होता है, सभी धर्म स्व-स्व स्वभाव से शून्य हैं।

उस व्यक्ति को इसका सम्यक् अवबोध हो गया। कुचिपा को निरालम्बन महा मुद्रा परम सिद्धि का लाभ हो गया। वह 'कहरि' जनपद आदि [अनेक स्थानों] में सौ वर्ष तक जगतार्थ करते रहे। उनका नाम भी 'कुचिपा' प्रसिद्ध हुआ। अन्त में सात सौ शिष्य परिवार के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु कुचिपा का वृत्तान्त समाप्त

३६. गुरु घमपा का वृत्तान्त

गुरु घमपा का वृत्तान्त इस प्रकार है। घमपा [धम्बा ?] का अर्थ है, 'श्रुति-मयी प्रज्ञा'

उनका जन्म स्थान विक्रमसुर [पुर] नामक जनपद था और जाति के वह ब्राह्मण थे।

विक्रमसुर में एक ब्राह्मण सदा श्रवण [शास्त्र सुनने] में लगे रहते थे; परन्तु चिन्मयी एवं भावनामयी प्रज्ञा से वह शून्य थे। एक समय उनके पास एक योगी आ पहुँचे और योगी ने उनसे कहा कि—बहुश्रुत बुद्धि में बहुत धर्म होगा ?

उस ब्राह्मण ने योगी से कहा—हे आर्य ! मैंने धर्म का श्रवण तो बहुत किया, पर सुनने के तुरन्त बाद सब भूल जाता है। [मेरे पास कुछ नहीं है, अतः] आप मुझे न भूलने की [कोई] दीक्षा [हो, तो] दें।

अनेक रत्नकणों को, सोनार सम्यक् रूप से एक कर देते हैं,

उसी प्रकार नाना श्रवण को भी, चित्त धातु में पिघला दो।

इस [उक्ति] का अर्थ अवबोध होकर उस व्यक्ति को समस्त श्रुत धर्म एवं अनेक चित्त की [अद्वैत] समरसता का ज्ञान हो गया। फलतः उन्हें महामुद्रा परम-सिद्धि का लाभ हुआ। उनका नाम घमपा प्रसिद्ध हो गया।

अनेक विनेय लोगों को मार्ग में आरूढ़ करके उसी शरीर के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु घमपा का वृत्तान्त समाप्त

३७. गुरु महिलपा का वृत्तान्त

गुरु महिलपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—महिलपा का अर्थ है, घमण्डी। उनका जन्म स्थान मगध था और वे जाति के शूद्र थे।

मगध जनपद में शूद्र जाति के एक व्यक्ति शरीर से बहुत बलवान एवं स्वस्थ रहते थे। वह सदा यह सोच कर कि—मेरे बराबर कौन हो सकता है, सबके लिये सक्षम हूं, बहुत अभिमान किया करते थे। एक दिन एक योगी उनके पास आये और उनको देखकर कहने लगे कि—तुम क्या सोच रहे हो ?

उसने उत्तर दिया कुछ नहीं सोच रहा हूँ।

योगी ने कहा—मेरे द्वारा [दबाया नहीं जा] सकता हो, ऐसा कोई नहीं है। यह विचार क्या है ?

[यह सुनकर वह बलवान आदमी] उस योगी के प्रति बहुत श्रद्धालु हो गया। [उसने योगी को] 'नमो' कहकर प्रणाम किया।

[योगी ने उसके उत्तर में]--'अभिमान का मल विशुद्ध हो' कहा।

उस [बलवान] ने योगी से निवेदन किया कि आप मुझे कुछ धर्म का उपदेश दें।

[योगी ने] हो सकता है [औचित्यम्] कहकर प्रभाव-संक्रमण अभिषेक दिया और कहा—

लोक [आलोक] चित्त में ही जान लो, चित्त शून्य अविरोध अनुत्पाद है,
उसी की निर्विक्षेप भावना है, धर्मता में लीन होना फल है।

उस आदमी ने कहा कि--हम नहीं समझ सके।

पुन: [योगी ने] कहा—

तुम ही बहुत बलवान हो,
हमारे द्वारा अक्षम यहाँ कोई नहीं है।
तीनों आलोक [विषय] वायु एवं चित्त को, आकाश के मध्य में ग्रहण कर लो।

इस प्रकार उन्होंने विरोध—मार्ग के रूप में उपयोग करने का उपदेश दिया।

उस [बलवान] ने भी यह तो क्या कठिन है, सोचकर ग्रहण किया, तो ग्राह्य विषय नहीं मिल सका [जिसके कारण] ग्राहक चित्त भी खो गया। सर्वत्र 'आकाश मध्य' के समान देखकर 'परमसिद्धि' की प्राप्ति हो गयी।

मगध आदि अनेक जगहों में तीन सौ वर्षों तक अपरिमित विनेय जनों के लिए नि:स्वभाव धर्मता को वलवत्तर देशना करते रहे। अन्त में ढाई सौ शिष्य परिवार के साथ उसी शरीर के द्वारा खेचर भूमि चले गये।

गुरु महिलपा का वृत्तान्त समाप्त

३८. गुरु अचिन्तपा का वृत्तान्त

गुरु अचिन्त का वृत्तान्त इस प्रकार है—'अचिन्त' का अर्थ स्मृति-रहित है। इनका जन्म स्थान 'मानिरूप' था और वे जाति के काष्टहारी (लकड़ी बेचने वाले) थे।

वे अत्यन्त गरीब एवं दरिद्रता के कारण रात दिन धन-द्रव्य की तृष्णा में लगे रहते थे। अन्य कोई भी लौकिक विकल्प (लोक व्यवहार की बातों के विचार) उनके मन में कभी उठते ही नहीं थे। सब समय धन द्रव्य के विकल्प से पीड़ित होकर एक दिन एकान्त जगह में बैठे थे कि योगी कम्बलपा उनके पास आ पहुंचे। उन्होंने कहा कि—

तुम एकान्त में काय—वाक् एकांत होकर बैठे क्या सोच रहे हो?

उस (गरीब) ने उत्तर दिया—हे योगी मुझे तो लौकिक धन-द्रव्य को चिन्ता करने पर भी नहीं सूझता। पर धन की चिंता करने पर भी मिलता कुछ भी नहीं है।

आचार्य (कम्बलपा) ने कहा—मेरे पास धन-द्रव्य प्राप्त करने के उपदेश हैं। तुम इसकी साधना कर सकोगे?

उस (गरीब) ने कहा—उसकी साधना नहीं कर पाने का प्रश्न ही नहीं है, वह मुझे अवश्य दें।

आचार्य ने उसे श्री परमसुख (चक्र सम्वर) के (मण्डल में) अभिषेक दिया और गम्भीर सम्पन्न-क्रम की दीक्षा दी। वह इस प्रकार है—(दोहा में)

इष्ट मात्र से प्राप्त कहां होता है? जैसे वन्ध्या पुत्र पुत्र है,
अतः काम चिन्ता त्याग कर, स्वकाय आकाश मध्य में।
स्वचित्त नक्षत्र की स्पष्ट भावना करो, तदपि धन देवता है,
साक्षात्कार के समय समस्त इष्ट काम आ जायगा।

उसने (भी इस दोहे का अर्थ अवबोध के साथ) वैसी ही भावना की। फलतः उसका धन-द्रव्य का विकल्प नक्षत्र के रस में खो गया। नक्षत्र भी आकाश के बीच में विलीन हो गये और निर्विकल्प (की अवस्था में वह पहुंच) गया।

पुनः एक दिन आचार्य ने स्वयं उसके पास आ कर पूछा (कि क्या हुआ और क्या देखा?)।

उसने उत्तर दिया कि—कुछ भी नहीं उपलब्ध हुआ।

आचार्य ने उसकी निर्विकल्प (भावना) की अवस्था को देख कर पुनः उससे कहा—(दोहा)

कैसे आकाश स्वभाव, तुमने विषय के रूप (में ग्रहण) किया?
जो वर्ण-संस्थान से रहित है, (उसके प्रति) कैसे आसक्ति और कैसे भावना की।

(शिष्य ने) इसका अभिप्राय समझ लिया और उसे 'महामुद्रा' (परमसिद्धि) का लाभ हो गया। उसका नाम गुरु 'अचिन्त' सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया। अचिन्त ने तत्व धर्मता की देशना द्वारा तीन शताब्दियों तक सत्वार्थ सम्पादन किया; अन्त में अपरिमित शिष्य परिवार के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु अचिन्तपा का वृतान्त समाप्त

३९. गुरु वभट्ट (वभट्टि) का वृत्तान्त

गुरु वभट्टि का वृतान्त इस प्रकार है। वभटि्ट का अर्थ है, जल से क्षीर (दूध) लेने वाला। उनका जन्म स्थान 'घंजुर' था। जाति के वह क्षत्रिय थे। घन्जुर नामक प्रदेश (जनपद) में क्षत्रिय जाति के एक व्यक्ति काम भोगों से उन्मद हो राज कर रहे थे। एक दिन उनके पास एक सु–अभ्यस्त योगी आ पहुँचे, उन्होंने भोजन के लिए उनसे भिक्षा की याचना की। उन्हें उत्तम भोजन कराया गया और राजा उनके श्रद्धालु हो गये। राजा ने उनसे कहा कि—'आप कुछ धर्मोपदेश दें।'

योगी ने 'समस्त धर्म का मूल समय[1] है, सभी सिद्धियों का मूल गुरु है।' कह कर उन्हें प्रभाव-संक्रमण अभिषेक दिया और 'नाड़ी,–'वात' विन्दु की देशना दी। (वह इस प्रकार है—(दोहा)—

पर काय उपाय युक्त विशिष्ट, भगाकार मण्डल में
रक्त महासमुद्र में, बोधिचित्त क्षीर मिला कर लो।
त्रिस्थान प्राप्ति के बाद गर्भ में फैलाओ, भिन्न-भिन्न सन्तति सुख वैसा नहीं,
सुख से सुख प्रहाण होने पर, उसकी भी शून्यता में
निर्भिन्न भावना करो।

उन्होंने भी (इन दोहों के अर्थ साक्षात्कार) की भावना का अनुष्ठान किया। बारह वर्ष बाद दर्शन प्रहातव्य मल-विशुद्ध हो कर परम सिद्धि प्राप्त हो गये। अनेक विनेय जनों के अर्थ साधन के बाद सशरीर खेचर भूमि को उन्होंने प्रस्थान किया।

गुरु वभट्ट (वभटि्ट) का वृतान्त समाप्त

---

१ वभट्टि की जगह, ववट्टि, वभट्ट, वभट्टि आदि रूप मिलते हैं। कदाचित् इन शब्दों का अर्थ 'बतख' होगा।

४०. गुरु नलिनपा का वृत्तान्त

गुरु नलिनपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—'नलिनपा' का अर्थ है, पद्म मूल वाला। इनका जन्म स्थान शालिपुत्र था (और जाति के वह क्षत्रिय थे)।

शालिपुत्र जनपद में एक क्षत्रिय व्यक्ति अत्यन्त गरीब हो जाने से झील के अन्दर से पद्म मूल लेकर जीविका चला रहे थे। एक समय एक योगी से उनकी भेंट हुई। उन्होंने (योगी को भी उस पद्ममूल का भोजन) कराया। उस (योगी) ने भी उन्हें संसार के दोष एवं निर्वाण की देशना दी।

उस राजा ने संसार के प्रति विरक्त होकर गुरु से कहा—गुरु जी! उस निर्वाण को प्राप्त करने के कुछ उपाय की हमें देशना दें। योगी ने, उचितम्, कहकर उन्हे गुह्य समाज (के मण्डल में प्रवेश कराया और) अभिषेक दिया। योगी का उपाययुक्त स्वकाय आश्रित उपदेश इस प्रकार था—(दोहा)

मूर्धा में महासुख हकार शुक्ल सम्यक् चिन्त्य
नाभि में निर्माणाक्षार व, प्रज्वलित से हं का स्रवण हो।
नन्द-आनन्द परमानन्द, सहजानन्द क्रमशः ही
सम्भूत से संसार दोष, और मुक्ति महासुख दानादान।

उसने भी (इन दोहों का यथा अभिप्राय) वैसी ही भावना की।

फलतः जैसे पद्म 'पंक' से उत्पन्न होने पर भी पंक से अस्पृष्ट होता है, वैसे ही भाव्याचार आनन्द को चार चक्र पर आधारित कर भावना करने पर भी आलम्बन एवं संसार के दोषों से अस्पृष्ट ही रहा।

नौ वर्ष के बाद (उस भाव्य) अर्थ का अवबोध होकर सभी प्रकार के भ्रान्ति मलों से (उनका चित्त) विशुद्ध हो गया। फलतः 'महा-मुद्रा परम सिद्धि' का उन्हें लाभ हुआ।

उन्होंने शालिपुत्र में अनेक जगतार्थ सम्पादन किए। वह चार शताब्दी के बाद साढ़े पांच सौ शिष्य परिवार से साथ शरीर द्वारा खेचर भूमि चले गये।

गुरु नलिनपा का वृतान्त समाप्त

४१. 'गुरु भुसुकु' पा का वृत्तान्त

गुरु भुसुकुपा[१] का वृत्तान्त इस प्रकार है। नालन्दा[२] में क्षत्रिय जाति के एक व्यक्ति बड़े भद्र स्वभाव के थे और वे परिव्रजन चर्या ग्रहण करके भिक्षु बने।

उस समय नालन्दा में राजा देवफल (पाल) राज करते थे। उस समय उनके धर्मपीठ में सात सौ भिक्षुओं के संघ का भोजन पानी आदि भाव्य लाभ सत्कार हुआ करता था। चारों निकायों के (भिक्षु) लोग वहां विद्यमान थे। उनमें से महासांघिक निकाय के उपाध्याय के पास तीन सौ शिष्य थे। अन्य सब लोग बड़े उद्यमी थे और सभी पांच विद्या स्थानों के वे लोग विशेषज्ञ थे। एक क्षत्रिय भिक्षु थे, वह सब समय सोते रहते थे और उनको पाचन शक्ति भी बहुत प्रबल थो। प्रतिदिन पाँच सेर (पका) चावल खाते थे। उसे देखकर राजा देवपाल कहने लगे कि—यह तो भुसुकु है। इससे उनका नाम भुसुकु प्रसिद्ध हो गया। 'भुसुकु' से तात्पर्य, खाना-सोना और शौच जाना-भुक्ता, सुप्ता और कुकता है।

नालन्दा विद्यापीठ में यह प्रथा प्रचलित थी कि वहां के सभी विद्वान बारी-बारी से सभा में सूत्रों का पाठ करें। वहाँ के सभी लोग भुसुकु की बड़ी निन्दा किया करते थे। उनके उपाध्याय ने भी उनसे कहा कि 'तुमसे सूत्र-पाठ आदि कार्य नहीं हो पाएगा। अतः तुम यहाँ से चले जाओ।'

भुसुकु ने उत्तर दिया कि—शील से बिना भ्रष्ट हुए मुझे स्थान-च्युत करना उचित नहीं है। विद्या अध्ययन का मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं है। यह कह कर उन्होंने वहाँ से जाने में अनीच्छा व्यक्त की और बैठे रहे। एक दिन सूत्र-पाठ की उनकी बारी आ गयी। संघ ने उन्हें सूचना दी कि—कल सभा में तुम्हारी सूत्र पाठ की बारी है, पाठ करो। उन्होंने स्वीकार किया। नालन्दा के सभी भिक्षु एवं विद्वान परिहास कर रहे थे कि कल भुसुकु का सूत्र पाठ देखना है।

---

१ 'भुसुकु' का अर्थ है—भुक्ता, सुप्ता और कुकता अर्थात् खाना, सोना और पचाना [पेट में पचा कर—मलमूत्र के रूप में फेंकना] समास—'भुसुकु' है।

२ 'नालन्द' उनका अध्ययन स्थान ही था। इनका जन्म स्थान 'भद्रनगर' या सौराष्ट्र था। ये जाति के क्षत्रिय थे। इनके पिता का नाम महाराज कल्याणवर्मा था। इनका 'शान्तवर्मा' था। बचपन से ही ये बड़े तीव्र बुद्धि के थे। एक 'भुसुकु' योगी से इन्होंने 'तीक्ष्ण मंजुश्री' की साधना ग्रहण की और फलतः इष्टदेव का साक्षात्कार हुआ। जब इनके पिता का देहान्त हुए इन्हें राजगद्दी पर बैठना था। उसी समय राजमहल छोड़कर नालन्दा आये। (इ० वुस्तो० इ० पृ० ११३ B. vol. No 240, P. 858। तारा, इ०, के अनुसार इनका नाम मंजुवर्मा था।)

(इससे उनके उपाध्याय[1] बहुत चिन्तित हो गये) और उनसे कहा कि तुम विद्या—अध्ययन के समय खाते और सोते रहे। अब नालन्दा के विद्वानों के बीच में सूत्र का पाठ नहीं कर पाओगे। भुसुकु ने उत्तर दिया—'हम सूत्र पाठ करेंगे।' यह कह कर उन्होंने उपाध्याय की बात अनसुनी कर दी।

फिर उपाध्याय ने कहा—तुम्हारे द्वारा यदि सूत्र का पाठ यथार्थतया न हुआ, तो तुम्हें स्थान-च्युत किया जायगा। अतः तुम्हारा यह काम छोड़ बैठना उचित होगा।

फिर भी (भुसुकु ने—'मैं खुद जानता हूं' कहा, सुना नहीं। (उपाध्याय बड़ी विपत्ति में पड़ गये) आर्य मंजुश्री का मन्त्र–ओं अर-पचन धीः–देकर कहा कि इसको रात भर बिना सोये जप करो। उन्होंने इस प्रकार मन्त्र एवं दीक्षा दी। उन्होंने भी रात भर बिना सोये गले में रस्सी बाँधकर मन्त्र का जप किया।

फलतः आर्य मंजुश्री प्रकट हुए। और उन्होंने कहा कि भुसुकु तुम क्या कर रहे हो?

उन्होंने कहा—मुझे कल (सभा में) सूत्र पाठ के लिए उपस्थित होना है। अतः आर्यमंजुश्री की प्रार्थना कर रहा हूं।

आर्य ने कहा—तुमने हम को पहचाना है?

भुसुक—मैं नहीं पहचान पाया हूँ।

आर्य—मैं मंजुश्री हूँ।

भुसुकु—फिर मुझे प्रज्ञा सम्पन्नता की सिद्धि प्रदान करें।

आर्य—तुम्हें मैं प्रज्ञा दूंगा, कल तुम सूत्र पाठ अवश्य करो।

यह कह कर वह अन्तर्ध्यान हो गये।

दूसरे दिन सूत्रपाठ के समय संघ के उद्यान में राजा आदि सभी जनसमूह यह कहते हुए कि भुसुकु का सूत्र पाठ देखेंगे। एकत्र हो गये। पुष्पादि पूजा के उपकरण सहित भाव्य व्यवस्था करके सब लोग वहाँ गये।

भुसुकु पा, संघ के दिन का भोजन करके, निर्बाध होकर विहार में आये और गद्दी पर बैठ गये[2]। उनके विशेष प्रभाव को देख कर सब लोगों को कुछ संदेह हुआ। सामने से पर्दा लगाकर उन्होंने कहा कि—अब मैं जैसा पहले से ही है, ऐसे सूत्र का पाठ करूं या जो पहले नहीं है, ऐसे सूत्र का पाठ करूं? (इनके इस कथन को सुन कर) पण्डित लोग एक दूसरे की ओर देखने लग गए और राजा एवं अन्य

---

१ इनके उपाध्याय का नाम 'जिनदेव' था। ये नालन्दा के पास सौ बड़े पण्डितों के अग्रगण्य थे। जब शान्तवर्मा अपना राजमहल छोड़कर नालन्दा आये थे, तो इन्ही के उपाध्यायत्व में उन्होंने भिक्षु सम्वर ग्रहण किया। बुस्तोन इ० पृ० ११३। B. vol. No. 240, P. 8581

२ बहुत ऊँचे गद्दी को हाथ के स्पर्श मात्र से नीचा कर देने का वृत्तान्त भी है। सामने पर्दा लगाने की बात अन्यत्र नहीं मिलती।

जन सुन कर हंस पड़े। राजा ने कहा कि—तुम्हारे खाने का ढंग भी अपूर्व है, सोना और शौच की चर्या भी अपूर्व ही है, अब धर्म भी अपूर्व ही बतलाओ।

उन्होंने दस परिच्छेदात्मक 'बोधिचर्यावतार' का पाठ आरम्भ किया। और (अन्त में) आकाश में उड़ गये। नालन्दा के पाँच सौ पण्डित, राजा, देवपाल और जन समुदाय में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा हो गई। उन लोगों के पुष्प आदि चढ़ाने से (सभा के चारों ओर) पुष्प की राशि धरती में घुटने भर इकट्ठी हो गई।

सब लोगों ने कहना आरम्भ कर दिया कि यह भुसुकु कहाँ है, यह तो बहुत (प्रकाण्ड) पण्डित है। राजा सहित सब लोगों ने इनको 'शान्तिदेव'[१] कहा। अर्थात् राजा और सभी पण्डितों का अभिमान उन्होंने शान्त किया अतः यह शान्ति[२] देव है। वहां इकट्ठे पण्डितों एवं सभी लोगों ने उनसे निवेदन किया कि इसकी (बोधि-चर्यावतार की) एक टीका की रचना करें। वह बाद में की[३] गई। सब लोगों ने उपाध्याय के रूप में वहाँ रहने के लिए प्रार्थना की, तो उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

तत्पश्चात् उन्होंने चीवर-पात्र आदि भिक्षु की उपयोगी सामग्री विहार में त्रिरत्न के समक्ष अर्पित कर दी और वहाँ के उपाध्याय एवं संघ के न सुनी में वे वहाँ से चले गये। वे क्रमशः वहाँ से धोकरि नगर जिसकी जनसंख्या ढाई लाख थी, पहुंचे उनके पास सोने से रंगी एक काष्ट की तलवार थी। वहाँ के राजा से उन्होंने निवेदन किया—मुझे आप तलवार धारियों में सम्मिलित करें। राजा ने स्वीकार किया। वेतन के रूप में प्रतिदिन दस तोला सोना दिया गया। इसी को जीविका बना कर बारह वर्षों तक तलवार का काम करते रहे। और साथ ही रहस्यार्थ की (अविछिन्न रूप से) साधना करते रहे।

एक समय-शरत् काल में तलवार वाले (राज सेवक) इकट्ठे हो कर उमा देवी की पूजा करने की प्रथा के अनुसार सभी तलवार धारी पूजा में बैठे तो शान्ति देव ने भी वैसा ही किया। उसके बाद एक दिन सब लोगों को अपनी तलवार धोना होता था उस दिन सब लोगों ने अपनी तलवारें धोईं तो उन लोगों में से एक ने यह देख लिया कि शान्ति देव की तलवार लकड़ी की है। उसने राजा से शिकायत की।

राजा ने—शान्तिदेव से कहा कि—अपनी तलवार हमें दिखाओ।

---

१ बुस्तोन के अनुसार—'शान्तिदेव' नाम उनके उपाध्याय महापण्डित जिनदेव ने उस समय रखा था जिस समय उन्होंने परिव्राजक भिक्षु सम्वर ग्रहण किया। इससे पूर्व उनका नाम शान्तवर्मा था।

२ सम्भवत : लोगों ने उनके नाम की सार्थकता की व्याख्या की।

३ यहाँ 'टीका' की बात कुछ अस्पष्ट है। बोधिचर्यावतार की स्ववृत्ति की चर्चा कहीं भी नहीं है। नालन्दा के पण्डितों ने बाद में आचार्य शान्तिदेव के पास जा कर उक्त ग्रन्थ पर व्याख्यान देने के लिए प्रार्थना की और उन्होंने दिए भी, यह टीका की बात हो सकती है (बुस्तो इ० पृ० ११३, B.२५ P.८६०)।

शान्तिदेव ने कहा—दिखायेंगे, तो आप लोगों का अनिष्ट होगा, अतः दिखाना उचित नहीं होगा।

(राजा ने कहा)—अनिष्ट हो, तो क्या होगा, अवश्य दिखाओ।

(शान्तिदेव ने कहा)—आप सब लोग अपनी एक आँख (हाथ से) ढँक दें। सब लोगों ने वैसा ही किया। शान्तिदेव ने अपनी तलवार मियान (कोष) से निकाली, तो उसकी चमक से अक्षम हो कर सभी लोगों की आँखे जो खुली थीं, अन्धी हो गईं।

राजप्रमुख सब लोगों ने क्षमा मांगी और प्रार्थना की कि उन लोगों की आँखें लौट आएँ उन्होंने सब लोगों की आँख पर जो अन्धी हो गई थीं अपने मुँह का पानी (थूक) लगा दिया। तत्काल सब आँखें पूर्ववत् हो गईं। इस घटना से सब लोगों ने अचंभित हो कर उनसे अपने यहाँ पूज्य स्थविर के रूप में रहने के लिये निवेदन किया, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। वहाँ से वह चले गये[1]।

उसके बाद वे एक पहाड़ के बीच में रह वन प्राणियों को मारते और उनका मांस खाते हुए रहने लगे। लोगों ने देखा और उनका वृत्तान्त राजा को सुनाया। राजा ने अपने सैन्य परिवार के साथ वहाँ जा कर उनसे कहा—हे (योगी!) आपने पहले नालन्दा के राजा आदि का (अभिमान) दमन करके धर्मारूढ़ किया। यहाँ (मेरे राज्य में) भी सब लोगों की आँखों का पुनरुद्धार आदि कार्य किया। इतनी शक्ति से सम्पन्न होते हुए भी प्राणी बध करना क्या उचित है ?

शान्तिदेव ने उत्तर दिया कि—मैंने, नहीं मारा, देख लो, कह कर अपनी झोपड़ी का दरवाजा खोला, तो वहाँ उनके द्वारा मारे गये वन के प्राणी पहले की अपेक्षा दुगने स्वस्थ और ताजे बैठे थे और वहाँ से निकल कर वे चारों ओर छा गये। राजा आदि में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा आ गई और मृगादि वन प्राणी कहाँ गये, सब वहीं खो गये। इस दृश्य को देख कर राजा आदि सौभाग्यशाली लोगों को समस्त धर्म (रूपादि धर्म) माया—स्वप्न वत् आद्यानुत्पन्न असिद्ध, निः स्वभावता का ज्ञान हो गया। (और वे सब बोधि) मार्गारूढ़ हुए!

(शान्तिदेव ने) कहा—(दोहा)—

मैंने जिन मृगों को मारे, वे आद्यतः कहीं से भी नहीं आये,
मध्य में कहीं भी स्थित नहीं हैं, अन्त में कहीं निरुद्ध भी नहीं होंगे।
आद्यतः प्रसिद्ध धर्मों में, बाध्य-बाधक कहाँ सिद्ध होगा ?
अहो जीव करुणा के योग्य हैं,
यही कहता हूँ भुसुकु मैं।

---

१ तलवार वाली घटना बुस्तोन और तारानाथ के वृत्तान्तों में कुछ भिन्न प्रकार से है, (बुस्तोन इ० B. vol. No. २५ P. ८५८-६१)।

तारानाथ इ० पृ० १५३-५४, अध्याय २५ तारानाथ के समान ही खनपो वन्-दन् स्नङ् वा के शान्तिदेव वृत्तान्त में भी उल्लिखित है (प्र० १-६ यावत्)।

इस प्रकार वहाँ के राजा आदि के (सभी तरह के मान अभिमान का) दमन कर सब लोगों को (बोधि) मार्ग (में) आरूढ़ किया। श्रद्धालुओं को धर्मारूढ़ करने के बाद भुसुकु ने एक ही रात की साधना से महामुद्रा परमसिद्धि का लाभ किया। काय-वाक् एवं चित्त, तीनों के अभिन्न (एकता) का ज्ञान पा कर क्षण धर्म[1] से निकल और अन्त में सौ वर्ष की अवस्था में उसी शरीर द्वारा खेचर भूमि चल गये।

गुरु भुसुकु का वृत्तान्त समाप्त

---

१ क्षण धर्म से निकल-यहाँ 'क्षण' से अभिप्राय : आयु की अनित्यता से है। जिसका 'क्षण' जन्म मरण धर्म के पराधीन है; उस पराधीनता से मुक्त हो कर परम सिद्धि अर्थात् अमरत्व का लाभ ही क्षण-धर्म से निकलना है।

४२. गुरु इन्द्रभूति का वृत्तान्त

उद्यान (उज्जैन) देश के महानगर में (एक समय) पाँच लाख घराने (घर के) लोग रहते थे और उन पर दो राजा राज करते थे। उक्त देश से 'सम्भोल' नामक ढाई लाख की जनसंख्या वाले जनपद के राजा इन्द्रभूति थे। लंकापुरी, में जो ढाई लाख की जनसंख्या की थी, महाराज जालन्धर शासन किया करते थे।

सम्भोल के राजा इन्द्रभूति की बहिन थी, जिसका नाम लक्षिकर (लक्ष्मीकर) था। वह सात वर्ष की अवस्था में ही थी, तो लंका पुरी के राजा जालन्धर ने अपने पुत्र के लिये (उस राजकुमारी लक्षिकर की) मांग के लिये (इन्द्रभूति के पास) दूत भेजा, महाराज इन्द्रभूति ने अपने मन्त्रि परिषद् की बैठक बुलाई ओर अन्त में यह तय हुआ कि—राजा जालन्धर धर्म कार्य नहीं करते, इसके अलावा सब तरह से वह हम लोगों से समानता रखते हैं। अतः लक्षिकर उनको दी जाय। दूत से यह संदेश भेजा गया कि 'धर्म ग्रहण करना न करना मात्र अन्तर है, पर सम्बन्ध बन सकता है'।

दूसरे साल (जालन्धर के) सम्भोल राजकुमार राजा के यहाँ आये और लक्षिकर से उनकी भेंट हुई। उन्हें देख कर वह फिर अपनी राजधानी लौट गये। इन्द्रभूति ने उन्हें बहुत सा अश्व, हाथी, सोना-चाँदी आदि धन सम्पत्ति भेंट में दे कर लौटाया। राजकुमार के अपने महल पहुँचने पर उनके पिता ने पूछा कि बधू कहाँ हैं? राजकुमार ने कहा कि—अभी वह बहुत्त छोटी है, इसलिये (उनके भाई ने) नहीं भेजा। राजा ने कहा—'साधु'।

इधर महाराज इन्द्रभूति की कई रानियाँ थीं। वे सब धर्म के प्रति बहुंत श्रद्धा रखने वाली थीं। उनकी बहिन और रानियों ने सब ने गुरु कम्बलपा से अभिषेक एवं दीक्षा ग्रहण किये और सब साधना में लग गई।

(लक्षिकर) जब सोलह वर्ष की हुई। तो जालन्धर ने उन्हें ले आने के लिये दूत भेजा। यहाँ कैसे उनको दिया गया, बहिन ने सांसारिक धर्म से विरति ले कर साधना कैसे की) साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त करके एक 'जमादर' को कैसे अनुगृहीत किया, उसके बाद वे खेचर भूमि कैसे गईं। आगे उन्हीं के वृत्तान्त में दिखाया जायगा।

जब महाराज जलन्धर ने इन्द्रभूति को उनकी बहिन ने जो-जो किया उसका विवरण पत्र एवं दूत भेजा तो इन्द्रभूति ने कहा कि—मेरी बहिन ने सिद्धि प्राप्त कर ली यह बहुत सुखद बात है, पर मैं स्वयं शान्त सुखी हो कर यों ही बैठ गया, यह अच्छा नहीं हुआ।

इन्द्रभूति ने यह सोचा कि—मेरी बहिन ने अपना जन्म सार्थक कर लिया। मैं भी अल्पार्थ और अनेक दोषों से इस राज-काज को छोड़ कर क्यों नहीं धर्म की

ओर चलूं। यह सोच करवे अपने पुत्र को राज-काज सौंप कर एक गृह में बैठे साधना करते रहे। बारह वर्ष में उन्होंने महामुद्रा परम-सिद्धि का लाभ किया। परन्तु राज परिवार के लोगों को इसका पता नहीं चला। एक दिन उनके पुत्र प्रमुख परिवार के लोग और जनता के लोग उनको देखने गये तो दरवाजा बन्द था। लोगों ने उसे खोलने की चेष्टा की, तो आकाश से यह आवाज सुनाई पड़ी कि—दरवाजा मत खोलो, मैं यहीं हूँ। लोगों ने ऊपर देखा, तो इन्द्रभूति आकाश में ही विराजमान थे। सब लोगों को प्रथम भूमि प्राप्त जैसे आनन्द हुआ और सब लोगों ने बड़ी श्रद्धा के साथ उन्हें प्रणाम किया। वे एक ओर बैठ गये। राजा (इन्द्रभूति) ने आकाश में ही विराजमान हो कर सात दिन तक अपने राजकुमार प्रमुख और सभी राज परिवार के लोगों को बड़े विस्तृत एवं गम्भीर धर्मों के अपरिमित उपदेश दिये। अन्त में सात सौ शिष्य परिवार के साथ वह उसी शरीर से खेचर भूमि गये।

गुरु इन्द्रभूति का वृत्तान्त समाप्त

dscn4369.jpg (1704x2272x24b jpeg)

४३. गुरु मेकोपा का वृत्तान्त

गुरु 'मेकोपा' का वृत्तान्त इस प्रकार है,—बंगाल जनपद में भोजन बेचने वाली जाति का एक व्यक्ति एक योगी को सब समय भोजन आदि से सेवा करता रहा। एक दिन योगी ने उससे पूछा कि—हे आयुष्मान! तुम मेरा इतना लाभ सत्कार क्यों कर रहे हो ?

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—हे योगीवर—मुझे परलोक जाते समय मार्ग—पथ्य की आवश्यकता है।

योगी ने (पुनः) पूछा कि—तुम परलोक के मार्ग—पथ्य की साधना कर सकोगे ?

उसने उत्तर दिया—अवश्य मैं उसमें समर्थ होऊंगा।

योगी ने उन्हें प्रभाव-संक्रमण अभिषेक प्रदान किया। और चित परिचायक (-चित की तत्व ज्ञापक) दीक्षा इस प्रकार दी। (दोहा--

स्वचित चिन्तामणि (के दर्पण) में, लोकालोक का अवभास होता है,
ज्ञात-अज्ञात दो ही है, अपरिणाम चित्त के ही रहस्य में देखो।
द्वैत विकल्प [वहाँ] कहाँ आते, निःस्वभाव उस रस में।
समस्त धर्म किसी [रूप] में [भी] सिद्ध नहीं है, [इस स्थिति] के
अज्ञात भ्रान्ति काम से [ही जीव] आबद्ध होते हैं।

इस वचन के अनुसार उस व्यक्ति ने भी समस्त लोक (प्रतीयमान) धर्म अपने ही चित्त के रूप में देखा और चित्त गतागत (धर्म से) रहित तत्व के रूप में अवबोध हो गया। अपरिणामित-स्वचित्तगत अर्थ (के रस) में छः मास तक स्थिर रहने के बाद चित्त की प्राकृतिक (तात्विक धर्मता) भूतार्थ का ज्ञान प्राप्त हो गया। चमूमृग अपद (हिंसक जन्तु) की तरह श्मशानों में घूमते रहे। कभी त्रासकारी रूप से गांव एवं नगरों में आकर बहुत बड़ी आँख खोल कर (लोगों को) देखते रहते थे। लोगों ने उन्हें 'गुरु भयकर द्रष्टा' कहना आरम्भ कर दिया। (संभवतः मेकोपा का यही अर्थ हो) सर्वत्र उनका नाम मेकोपा प्रसिद्ध हुआ।

उन्होंने गम्भीर धर्मोपदेश के द्वारा बहुत से विनेय लोगों का कल्याण किया तथा अवदान (के रूप में बहुत से दोहे भी) कहे। अन्त में उसी शरीर द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु मेकोपा का वृत्तान्त समाप्त

र्मता] भूतार्थ [के ज्ञान का] ...
वरूप पहाड़ के समान है।

कोदलीरूपी जो प्रकाशमय और अनिरोध 'वित्ति' [ज्ञान-प्रभास्वर] है, उसके द्वारा खोदो। दो प्रकार के उद्यम [वीर्य] हैं, वे बाहु के समान हैं। दोनों से अविरल रूप से खोदना चाहिए।

इसका भाव दोहा द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

समस्त सुख और दुःख चित्त से होते हैं, उपदेश द्वारा चित्त का पहाड़ खोद लो,

मिट्टी का पहाड़ खोद भी ले, प्राकृतिक महासुख का बोध नहीं होगा।

इस वचनानुसार भावना करने से बारह वर्ष में उनको [कोदलिपा को] परम सिद्धि का लाभ हुआ। तत्पश्चात् अनेक जगत् कल्याण करके अन्त में उसी शरीर द्वारा वे खेचर भूमि चले गए।

गुरु कोदलिपा का वृत्तान्त समाप्त

४४. कोडलिपा का वृत्तान्त

गुरु कोडलिपा (कोदलिपा) का वृत्तान्त इस प्रकार है। रामेश्वर नामक स्थान से चार दिन का मार्ग पार करने के बाद (एक जगह में एक व्यक्ति जिसका नाम) कोदलिपा [था] रहने की जगह एवं क्षेम के लिये एक पहाड़ खोद रहे थे। उस समय आचार्य रत्नाकर शान्तिपा सिंहल द्वीप के राजा के निमन्त्रण पर लंका जा कर उस रास्ते से लौट आ रहे थे। उपर्युक्त जगह में कोदलिपा से उनकी भेंट हुई।

आचार्य ने उनसे कहा कि—तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?

कोदलिपा ने—आचार्य का अभिवादन किया और उनका योगक्षेम पूछा। अन्त में कहा कि मैं यहाँ पहाड़ खोद रहा हूँ।

आचार्य ने पूछा कि—पहाड़ खोदकर आप क्या कीजियेगा ?

कोदलिपा ने उत्तर दिया—दुष्ट राजाओं ने देश को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। सभी जनता दुःखी एवं पीड़ित है। हमारा कोई देश नहीं है। यहाँ मैं पहाड़ की तलहटी में खोदकर अपने रहने की जगह बनाऊंगा और यहीं हम लोग अपना देश बनायेंगे।

आचार्य शान्तिपा ने कहा—पहाड़ खोदने की शिक्षा [अववाद] मेरे पास है। यह तुम नहीं चाहोगे ?

उन्होंने [कोदलिपा ने] कहा—'भन्ते अवश्य चाहूँगा।

आचार्य ने कहा कि—[उपदेश-दोहा]

इस तरह के तुम्हारे काम, शरीर बहुत श्रान्त (थक जाना) हो जाता है,
काम यह बहुत अल्पार्थक है, यह विपरीत छः कर्मो में है।
मिट्टी खोदना दान है, पर अबाध शील है
(इसके लिये) दुःख सहन क्षमा है, तद् उद्यम वीर्य है।
तद् अविक्षेप ध्यान है, तत्ज्ञान प्रज्ञा है।
(ये) विपरीत छः कर्म, त्याग कर सम्यग् छः कर्म करो।

[वे हैं] गुरु के प्रति नम्रता [श्रद्धा] दान है, स्वसन्तति की [चित्तादि विहार की अप्रमादता] रक्षा शील है,

चित्त क्षमा [चित्त की धर्मता साक्षात्कार में सक्षम होना] क्षमा है, तद्भावना उद्यम है।

तद् विक्षेप ध्यान है, तत्ज्ञान प्रज्ञा है,

सदा [इन] की भावना करो।

यह कहने पर कोदलिपा ने पुनः आचार्य से कहा कि—[यह बहुत विस्तृत है, अतः इसका] एक संक्षेप भी हमें बतलायें।

[पुनः आचार्य ने कहा]—गुरु के प्रति श्रद्धा रखो।

इस वचनानुसार उन्होंने भी अपने (दैनिक) कर्मानुसार भावना करना आरंभ किया, छः वर्ष में उनको परमसिद्धि का लाभ हुआ। आस पास के किसी को भी यह ज्ञात नहीं हुआ (कि उन्हें परम सिद्धि का लाभ हो गया)। उनके अंगाराशय (जहाँ लोहा आदि गरम करके विभिन्न औजार बनाया जाता है) में सभी प्रकार के शिल्प (बिना कुछ किये, स्वतः सब कुछ तैयार होते गये। इस घटना को देखकर 'सालिपुत्र' के सभी लोगों ने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि हम लोगों के यह लोहार सभी प्रकार के गुण धर्मो से सम्पन्न हो गये हैं। सब लोग इस घटना से अचंभित हुए, उनका नाम सर्वत्र 'गुरु कंपरिपा' प्रसिद्ध होने लगा।

विनेय लोगों के अनेक अर्थ साधन के बाद उन्होंने कुछ अपने 'अवदान' भी कहे। अन्त में उसी शरीर के द्वारा खेचर भूमि चले गये।

गुरु कंपरिपा का वृत्तान्त समाप्त

४६. गुरु जालन्धर पा का वृत्तान्त

जालन्धर पा का वृत्तान्त इस प्रकार है। जालन्धर का अर्थ है, जाल धारण करने वाला। इनका देश नगर थोङथा था और जाति के ये ब्राह्मण थे।

सांसारिक धर्म के प्रति घृणा उत्पन्न होते ही वे एक दिन श्मशान में जाकर एक वृक्ष के मूल में बैठ रहे। चित्त में कुछ (शान्ति एवं) सुख की अनुभूति होने लगी। उस समय आकाश से डाकिनी की वाणी सुनाई पड़ी कि—हे कुलपुत्र! तुम भूतार्थ के मनसिकार (योनिशोमनसिकार) करो। यह (सुनकर) उन्हें बड़ा आनन्द और हर्ष हुआ। वह पुनः प्रार्थना करते रहे। फलतः एक ज्ञानी डाकिनी ने साक्षात् रूप दिखाया और उन्हें हेवज्र (के मण्डल) में अभिषेक प्रदान किया। उन्हें सम्पन्न क्रम की दीक्षा इस प्रकार दी।

बाह्य अध्यात्मिक-त्रैधातुक भजन लोक-स्वलोक समग्र अपने ही काय-वाक् और चित्त में समाविष्ट हैं। इन तीनों का विकल्प 'मूलत्रिक्' में समाविष्ट है। दो नाडी अवधूति में संगृहीत है। वहां की नाना स्मृति-संवित्तयां एवं विकल्प (होते रहते हैं) (वे सब) मूर्धन्य ब्रह्मद्वार से ऊपर निकाल दो। और प्रतिमास (प्रतीयमान) और शून्यता दोनों के अभिन्न रूप से (अभिन्नता) की भावना करो।

(तदर्थक दोहा)—

> बाह्य आध्यात्मिक अशेष धर्म, काय-वाक्-चित्त तीन में समाविष्ट हैं
> वाम-दक्षिण अवधूति में संगृहीत हैं, तदपि ब्रह्मद्वार में ही।
> शून्यतावत् परममहासुख, विशुद्ध योग रसेन होता है
> सुख शून्यता युगनद्ध का, संधारण (सर्वत्र) करो।

इस प्रकार सम्पन्न का उपदेश दिया, तो उन्होंने भी (तदनुसार) भावना (घोर साधना) की। सात वर्ष में उन्होंने महामुद्रा परभ सिद्धि का लाभ किया;

अपने अवदान (दोहे) भी कहे। अपरिमित जगतार्थ साधन के पश्चात् तीन सौ शिष्य परिवार के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु जालन्धर पा का वृत्तान्त समाप्त

४७. गुरु राहुल का वृत्तान्त

राहुल का वृत्तान्त इस प्रकार है—राहुल का अर्थ 'राहु' को धारण करने वाला है। ये काम रूप देश के थे और जाति के शूद्र थे। वे बहुत वृद्ध होने से अपने शरीर का संचालन भी ढंग से नहीं कर पा रहे थे। सभी बन्धु एवं पुत्रादि परिवार के लोग भी उनसे घृणा करते और गालियाँ देते थे। इससे उन्हें दुःख हुआ और पर जन्म का स्मरण हो आया और वे एक श्मशान में चले गये।

(वे श्मशान में बैठे ही थे) एक योगी उनके पास आ पहुँचे। योगी ने कहा—तुम इस श्मशान में क्या करने बैठे हो ?

उन्होंने कहा—(दोहा)—

मेरे यौवन चाँद को, राहु ने विनष्ट कर दिया,
पुत्र पौत्रादि भी डाँटने लगे, अच्छा है मरना सोच बैठा हूँ।

(योगी ने) पुनः उनसे कहा—(दोहा)—

तुम्हारे विपाक भूत (तत्त्व) को, त्रिक् नदी (धाराओं) ने बिखेर दिया है,
अब तो मरण नदी (बह) आयेगी, मरण पथ्य धर्म ग्रहण नहीं करोगे ?

उन्होंने कहा—हे गुरु ! धर्म का ग्रहण तो अवश्य करूँगा। परन्तु वृद्ध धन से रहित मेरे जैसे को धर्म-उपदेश कौन देगा ?

योगी ने कहा—

प्रकृति चित्त में क्षरा नहीं है, श्रद्धादि धन का क्षय नहीं होता,
नम्रता से सद्धर्म साध सको, तो तुम्हें अनुगृहीत करूँगा मैं।

योगी ने उन्हें प्रभाव-संक्रमण का अभिषेक प्रदान किया। विन्दु की दीक्षा इस प्रकार दी—तुम अपने मूर्धन्य प्रदेश में 'आ' से सन्भूत चन्द्र मण्डल और उसी के अन्दर समस्त भवलोक (प्रतीयमान भव) की कल्पना समाविष्ट करके भावना करो।

(तदर्थ दोहा)—

अद्वैत ज्ञान राहु द्वारा, ग्राह्य ग्राहक का हाण करके,
मूर्धन्य महासुख (मण्डल) में, गम्भीर विन्दु रस में ही।
सुख-शून्य युगनद्ध प्रवाह द्वारा, स्कन्धादि अरि हाण कर,
बुद्ध गुणों का सम्भव होता है, अहो, अनिरोध अद्भुत है।

इस वचन के अनुसार भावना (साधना) करते रहे। जब समस्त द्वैत चाँद अद्वैत राहु द्वारा खा लिए गये और अद्वैत अमृत मूर्धन्य ब्रह्म-द्वार के नीचे प्रविष्ट हो गया, समस्त काय (शरीर मण्डल) अमृत से भर गया और प्रफुल्ल होकर सोलह वर्ष की अवस्था में (उनका शरीर) परिणत हो गया तथा 'महामुद्रा परमसिद्धि' का उनको लाभ हुआ। कामरूपादि के अनेक विनेय लोगों को विनीत करके अवदान (दोहे) भी उन्होंने कहे।

अन्त में उसी शरीर के द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु राहुल का वृत्तान्त समाप्त

गुरु धर्मपा का वृत्तान्त इस प्रकार है। धर्मपा का अर्थ धर्मग्रहण करने वाला या धार्मिक है। उनका देश बोधिनगर था, (सम्भवत: जाति के वे ब्राह्मण थे)। धर्मपा (बहुत बड़े) पण्डित थे। पर वे प्रधानतः भाषण किया करते थे, साधना नहीं। जब बाद में वे बहुत वृद्ध हो गये और अन्धे हो गये। उनको यह चिन्ता हुई कि 'एक गुरु से मेरी भेंट क्यों न हो जाय।'

एक दिन स्वप्न में एक डाकिनी ने उन्हें निर्देश दिया कि—'तुम्हारा गुरु मैं ही हूँ।' उन्होंने (वृद्ध ने) उसी को ध्यान में रखकर प्रार्थना की। फलतः डाकिनी ने साक्षात् रूप से प्रकट होकर उन्हें अभिषेक प्रदान किया, और उपदेश दिया।

उनका उपदेश इस प्रकार है—समस्त (ज्ञेय) धर्म को पात्र के रूप में और समस्त विकल्प का तेल के रूप में भावना करो। अपने विज्ञान को (चित्त को) बत्ती के रूप में, और उसी को जलती आग मानकर भावना करो।

तदर्थक दोहा—

अशेष धर्म पात्र अन्दर, विकल्प का तैल बरैं,
संवित्ति बत्तो में आग जलाए चित्त चिन्तामणि देखेंगे।

इस विकल्प ज्ञान (परमज्ञान) के रूप में दृष्ट अववाद की साधना करते पाँच वर्ष में ही जैसे विष में मन्त्र फूँक दिया जाता है, उसी प्रकार (सभी) विकल्प ज्ञान के रूप में परिणत हो गये। उनका शरीर आठ वर्ष के बालक के समान हो गया। इस घटना से सभी लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

उन्होंने कहा कि—

जैसे हेतु प्रत्यय संगृहीत हो जाने पर, वह फल से शून्य कहाँ हो सकता है,
अतः प्रसाद बुद्धि वाले, उसके लिए करना चाहिये।

(वे बहुत दिन तक) एक पाठक (ग्रन्थादि पढ़ने वाला) के रूप में जगत् का कल्याण करते रहे। कुछ अपने अवदान (दोहे) भी कहे। अन्त में खेचर भूमि को चले गये।

गुरु धर्मपा का वृत्तान्त समाप्त

जाति के शूद्र थे। उक्त देश में एक शूद्र व्यक्ति सदा ...
ा माँगता रहता था और जो मिले वही उस पात्र में डालता जाता था।
दिन उसे उस पात्र में डालने के लिये कुछ भी नहीं मिल पाया तो एक वृक्ष
मूल के समीप जा बैठा। एक योगी उसक पास आ पहुँचे और उससे खाना माँगा।
(भिक्षुक ने कहा) 'हे योगी। आज तुम्हें देने के लिये मुझे कोई भी द्रव्य
ीं मिला।'

योगी ने कहा—तुम्हें कोई धर्म की आवश्यकता नहीं है?

उस (भिक्षुक) ने कहा—'चाहिये तो अवश्य ही, पर कल्याण मित्र से अभी
क भेंट ही नहीं हो पाई।'

योगी ने कहा—(तुमको यदि धर्मोपदेश मिल जाय, तो) उसकी साधना
र सकोगे?

उस (भिक्षुक) ने कहा—अवश्य करेंगे।

उस योगी ने हेवज्र (मण्डल में) अभिषेक दिया और (साधना के लिये)
उत्पत्ति एवं सम्पन्न-क्रम का उपदेश इस प्रकार दिया—

हे धोकरिपा तुम, धर्मधातु के पात्र में।
संवित्ति द्रव्यों को डालकर उसके अद्वैत की भावना करो।

उन्होंने भी (इस वचन का यथार्थ ग्रहण करते हुए) भावना की। अर्थ का
साक्षात्कार होकर तीन वर्ष में ही उन्हें परम सिद्धि प्राप्त हो गई। पुनः उन्होंने
पात्र उठाकर माँगना प्रारम्भ किया, तो सामान्य लोगों ने उनसे कहा कि—गुरुजी
का ग्रहण किया हुआ यह क्या है?

उन्होंने उत्तर दिया—(दोहा)—

महाशून्यता का पात्र उठा कर, महासुख फल की माँग कर रहा है।
(इस) कामना के साथ धोकरि, सौभाग्यवान (आप) लोगों को नहीं ज्ञात हूँ।

इस प्रकार उन्होंने अनेक जगत् कल्याण किये और अपने अवदान भी कहे।
उनका नाम सर्वत्र धोकरिपा प्रसिद्ध हुआ।

अन्त में वे उसी शरीर द्वारा खेचर भूमि चले गये।

गुरु धोकरिपा का वृत्तान्त समाप्त

५०. गुरु मेधिनीपा का वृत्तान्त

गुरु मेधिनी का वृत्तान्त इस प्रकार है—मेधिनी का अर्थ है, कृषक। वह जाति के शूद्र थे और सालिपुत्र देश के रहने वाले थे।

एक दिन वे खेत में काम करने से बहुत थक गये थे और आराम के लिये बैठे थे। उनके पास उस समय एक योगी आ पहुँचे। उस योगी ने उनसे कहा कि तुम क्या कर रहे हो ?

कृषक ने कहा—मैं तो कृषि काम से थक गया हूँ, और (आराम के लिये यहाँ बैठा हूं।

योगी ने कहा—इस तरह के दुःख से तुम्हें बुरा नहीं लगता ? कुछ धर्म ग्रहण करो।

कृषक ने उत्तर दिया—मुझे धर्मोपदेश कौन देगा ?

योगी ने कहा—यदि तुम साधना कर सकोगे, तो (धर्मोपदेश) मैं दूँगा।

कृषक—(साधना करने में) में अवश्य ही समर्थ हो सकूँगा।

उस योगी ने उन्हें अभिषेक प्रदान किया और उत्पत्ति एवं सम्पन्न-क्रम की दीक्षा देकर उन्हें भावना (साधना) में प्रयुक्त किया। परन्तु पूर्व संस्कार के कारण कृषि-विकल्प (अर्थात् कृषि काम से सम्बन्धित विचारों से आक्रान्त होकर भावना में उन्हें अरुचि पैदा हो रही थी। इस स्थिति को उन्होंने गुरु से कह सुनाया। गुरु ने उन्हें अपने विकल्प के आलम्बन के अनुरूप दीक्षा—इस प्रकार दी—

तुम अपने चित्त को हलके रूप में समझो, सुख-दुःखादि अनुभव को बैल बना लो, शरीर को क्षेत्र (खेत) मानकर (वहीं से) सदा धर्मता महासुख का फल होता हुआ-भावना करो। (तदर्थक दोहा—)

अपने विकल्प को हल (के रूप में), और सुख दुःख की अनुभूति बैल बनाओ,
विपाक स्कन्ध-भूमि में, धातु बीज का आरोपण करो।
महासुख का फल निरवछन्न (रूप से) होता रहेगा, (अतः) उस कृषि-कर्म में उद्योग करो।

इस (वचन) के अनुसार भावना किया। बारह वर्ष में सांसारिक नाना विकल्प अवरुद्ध हो गये, महामुद्रा परमसिद्धि का उन्हें लाभ हो गया। फिर उन्होंने सात ताल वृक्ष की ऊँचाई तक के आकाश में बैठ कर अपना अवदान कहा। सालिपुत्र नगर में अनेक जन कल्याण करने के बाद उसी शरीर के द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु मेधिनीपा का वृत्तान्त समाप्त

५१. गुरु पङ्कजपा का वृत्तान्त

गुरु पंकज का वृत्तान्त इस प्रकार है—ये जाति के ब्राह्मण थे और उन्हें सिद्धि अवलोकितेश्वर से प्राप्त हुई।

'पंकज' नामक एक ब्राह्मण पुत्र एक विविक्त (निर्जन) स्थान में कमल पंखुड़ी के समान कमल से उत्पन्न हुए। उस स्थान के समीप एक 'कमल झील' थी। उस झील के किनारे एक आर्य अवलोकितेश्वर की मूर्ति थी। 'पंकज' स्वयं महादेव के मानने वाले थे। उस मूर्ति को महादेव की मूर्ति मानकर उन्होंने बारह वर्षों तक उसकी पूजा की, पुष्पादि चढ़ाते रहे। उस जनपद की संस्कृति के अनुसार उस मूर्ति को तीनों समय में पूजा करके उस पर चढ़े फूल को लोग अपने सिर पर रखा करते थे। उस बीच में आचार्य नागार्जुन वहाँ पहुँचे और उन्होंने भी उस मूर्ति की पूजा की और उस पर फूल चढ़ाये, तो उस मूर्ति ने उनका (नागार्जुन का) फूल हाथ में ले लिया और उनके सिर पर रख दिया। इस घटना से पंकज को बड़ा क्रोध आया कि—मैंने बारह वर्षों तक इनकी पूजा की, आज उन्होंने (मूर्ति ने) मेरे फूल को अपने हाथ से ग्रहण नहीं किया। पर इसने (नागार्जुन ने) एक बार इन पर फूल चढ़ाये तो हाथ फैला कर ले लिया। इस पर उस मूर्ति के मुख से यह कहते सुनाई पड़ा कि—'तुम्हारा मन अशुद्ध है, यह मेरा दोष नहीं है।' यह शब्द सुनकर पंकज को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने आचार्य नागार्जुन का चरण शिरोधार्य करके उनसे निवेदन किया कि मुझ पर अनुग्रह करें। उन्होंने भी (नागार्जुन ने भी) वैसा ही किया। आचार्य ने उनको अभिषेक प्रदान किया तथा दर्शन एवं चर्या की युगनद्ध दीक्षा इस प्रकार दी—

कृपा राग का सुख, और आद्यतः असिद्ध (शून्यता वास्तव में) एक ही है। इसकी अभिन्नता को सम्यक् रूप से देखना, आर्य को अभिप्रेत है।

यह कहने पर उन्होंने (पंकज) ने सुचारु रूप से इसे समझ लिया। वे साधना में लगे, तो सात दिन में ही उन्हें परमसिद्धि का लाभ हो गया; तत्पश्चात् जगत्-अनुग्रह दृष्टि से चर्या के अनेक उपदेश दिये और कल्याण कार्य सम्पादन किये। अन्त में उसी शरीर द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु पंकजपा का वृत्तान्त समाप्त

---

१ कृपारूपी अनुराग अर्थात् कृपारूपी जगत अनुराग एवं प्रपञ्च उपशमन शिव-स्वरूप निर्वाण आद्यतः असिद्ध शून्यता एवं निःस्वभाव रस में एक ही है। यही तत्त्व आर्य लोगों के समहित ज्ञान के भाष्य का चिन्त्य विषय है।

dscn4380.jpg (1704x2272x24b jpeg)

५२. गुरु घण्टापा का वृत्तान्त

गुरु घण्टापा का वृत्तान्त इस प्रकार है—वे श्री नालन्दा जनपद के (महा-विहार स्थित) निकाय के थे।[१] वे अक्षुण्ण भिक्षु सम्वर से युक्त थे। सभी पंच-विद्या संस्थानों में पारङ्गत विद्वान होने के नाते उनका सुयश सर्वत्र फैल रहा था। आचार्य सभी प्रदेशों में जन कल्याण के लिए जाया करते थे।

उस समय राजा देवपाल नामक (शासक) अपने पुण्य बल से प्राप्त अपरिमित राज्य सम्पत्ति का भोग भोग रहा था। वह अपने अट्ठारह लाख नगर (१८ लाख घराने वाले जनपद), कामरूप के नौ लाख नगर (९ लाख घराने सम्भवतः) और बंगाल के चार लाख नगर, कुल मिलाकर इकत्तीस लाख नगरों पर राज किया करते थे। एक समय आचार्य उनके नगर सालिपुत्र[२] पहुँचे। वे भिक्षाटन करके एक वृक्ष के मूल में अपना स्थान जमाकर बैठे थे। यों, महाराज देवपाल के अनेक पूज्य गुरु थे। एक समय रात में राजा ने अपनी रानी से परामर्श किया और कहा कि सभी संस्कार अनित्य हैं, भगवत सभी धर्म दुःख हैं। सांसारिक धर्मों में कोई तत्व नहीं है। मैं तो इहलोक और परलोक दोनों में राज करूँगा। हम दम्पति परलोक के पथ्य के लिये अनेक पूज्य स्थानों (गुरुओं) से सम्भार (पुण्य) का संचय करना क्या उचित नहीं होगा ?

रानी ने उत्तर दिया कि—'आप के लिए बहुत से पूज्य स्थान (भदन्त) पहले से ही थे। अब भी अन्य पूज्य लोगों से विशिष्ट एक महान् विनयधर इस नगर के अन्त में एक वृक्ष के मूल में जीविका भिक्षा, चीवर आदि अल्प मात्र सामग्री से जीने वाले हैं। उनकी सेवा में,-चौरासी प्रकार के व्यंजन (दाँत से) काट कर खाने वाले चौदह प्रकार के चर्व्य, अंगूर के रस आदि पाँच प्रकार के पेय पदार्थ, दीप-प्रकाश के अतिरिक्त रत्नादि प्रकाश आदि-आदि राजा के सभी काम गुण उन्हीं को अर्पित किया जाय।' राजा ने भी कहा कि 'यह उचित है।'

दूसरे दिन राजपुरुषों के एक दल को आचार्य ने निमन्त्रण के लिये भेजा। पर आचार्य नहीं ले आये जा सके। फिर स्वयं राजा बहुत से राज-परिवार के लोगों को साथ लेकर आचार्य के पास गये।[3] वहाँ यथायोग्य प्रणाम अभिवादन किया और

---

१ घण्टापा का जन्मस्थान पूर्व भारत; वह वारेन्द्र जनपद के राजकुमार थे। पिता के देहावसान के बाद राजगद्दी पर आसीन हुए, तो उन्होंने उसे छोड़कर नालन्दा की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने नालन्दा में जिनदेव नामक उपाध्याय से उपसम्पदा ग्रहण की। नाम 'मतिसार' रखा गया। उनका दूसरा नाम 'जितारि' भी था।
(पद्कर इ० पृ० ७८-७९, बी० १५७)

२ पद्कर के अनुसार 'ओडिविष'।

३ कुनख्येन पद्कर के अनुसार राजा आखेट खेलते-खेलते उनके पास पहुँचे। आचार्य के दयनीय शारीरिक अवस्था को देखकर राजा को बड़ी दया आ गई। राजा ने उन्हें नगर (राजधानी) आने के लिए निमन्त्रण दिया। (पद्कर० इति, पृ० ७९-८०)

योगक्षेम पूछा। साथ ही बहुत सी सहज बातें हुईं।

(आचार्य ने कहा कि) आप क्यों इधर पधारे हैं ?

(राजा ने उत्तर दिया) हे महाचार्य ! श्रद्धा से आपको अपने पूज्य स्थान (पुरोहित) के लिये निमन्त्रण (अनुनय) लेकर आया हूं।

आचार्य ने कहा कि—राजा का राज-भक्त पाप से युक्त होता है। मैं वहाँ नहीं आऊँगा।

राजा—आप सदा के लिये (हमारे यहाँ) नहीं रहें, तो एक वर्ष तक तो अवश्य वैठने के लिए आयें। वह भी आचार्य ने स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार क्रमशः छः मास, तीन मास, एक मास, आधा मास और अन्त में एक दिन के लिये कम से कम आने को, कहा तो आचार्य ने क्रमशः स्वीकार नहीं किया और कहा कि पापी व्यक्ति चार प्रकार की चारिकाओं में से कोई भी करे, सब पापमात्र ही होता हैं। अतः मैं वहाँ नहीं आऊँगा'। इस प्रकार राजा के चौदह दिन तक पुनः निवेदन करने पर भी आचार्य ने स्वीकार नहीं किया।

राजा तथा उनके सभी राजपरिवार[1] के लोग बड़े क्रुद्ध हो गये। द्वेष की आग जलने लगी। राजा ने घोषणा की कि इस भिक्षु से ब्रह्मचारित्व कौन छीन सकेगा, उसे मैं अपना आधा राज्य पुरस्कार में दूँगा, बीस सेर सोना दूंगा। यह घोषणा सर्वत्र पहुँचाई गई। उस समय उस नगर में एक छल कपट से परिपूर्ण प्रधान नर्तकी रहती थी, उसने राजा से कहा कि—वह काम वह कर सकेगी।

राजा ने कहा—'तुम प्रयत्न एवं उद्यम से इस कार्य को अवश्य सिद्ध करो।'

नर्तकी ने सोचा कि—उसके पास एक बारह वर्षीय लड़की लौकिक धर्म से अस्पृष्ट, सुन्दर चेहरा, सुन्दर चाल, बोलने में अति मधुर स्वरवाली शरीर मांस से भरी, गहन स्तन, यदि उसे सूर्य भी देख ले तो विचलित हो जाय, मैं उसे इनको भेज कर उन योगी को संसार में वापस ले आकर ब्रह्मचारित्व से च्युत कर सकूँगी। इस उद्देश्य से उस लड़की की माँ आचार्य के पास गई और प्रणाम एवं प्रदक्षिणा करके लौट आई, इस प्रकार उसने इस कार्य को दस दिन तक जारी रखा। अन्त में उसने आचार्य से निवेदन किया कि—

मैं तीन मास के वर्षावास में तीनों मास के भोज की व्यवस्था करने वाली दायक बनना चाहती हूँ। (आप स्वीकार करें)। आचार्य ने इसको भी स्वीकार नहीं किया। वह एक महीने तक (इस बात को लगातार) दोहरा कर आचार्य से निवेदन करती रही। अन्त में आचार्य ने उसे स्वीकार कर लिया। नर्तकी ने प्रसन्न होकर बहुत से उत्सव का आयोजन किया[2] और कहा—

नारी का छल इक्यासी तरह का होता है, काम[3] भी उसे सौ गुना है।

१ परिवार से अभिप्राय—सेना, पुलिस और राजपुरुष से है।

२ सारा खर्चा राजभवन से पाती थी। —पद्-इति द्र० व्या०—पृ० ७८।

३ 'प्रेमराग' को ही यहाँ शब्द से कहा गया है।

यदि मैं हिलाना चाहूँ तो चारों द्वीप भी हिला सकती हूं, ठग सकती हूँ, फिर यह एक भिक्षु (को भ्रष्ट करना) कौन सी बड़ी बात है। उसने यह सोचा और बोलती भी गई।

(आचार्य वर्षावास के लिये उस वन में ही रह रहे थे) उससे आचार्य ने कहा कि--मेरा भोजन आदि पहुंचाने में लड़के ही भेजो, लड़कियों को मत भेजो। उसने उत्तर दिया कि—वैसा ही करेगी।

उसने आधे मास तक चीनी का शर्बत एवं भात आदि आचार्य के पास पुरुष द्वारा ही पहुंचाया। तत्पश्चात् अपनी लड़की को नाना प्रकार के अलंकारों से सुसज्जित किया और अनेक प्रकार के खाद्य, पेय पदार्थ उत्तम कोटि के भोजन की व्यवस्था करके पाँच सौ सेवकों के साथ उस लड़की को आचार्य के पास भोजन पहुंचाने के लिये भेजा[1]। सेवकों को (यह आदेश दिया गया कि) वन के बाहर से लौट आयें (लड़की को वहाँ से अकेली छोड़ दें)।

(सब लोगों ने वैसा ही किया) और लड़की भी अपनी माँ द्वारा सिखाये गये सभी छल-हाव भाव को स्मरण करते हुए अन्दर पहुँची। भिक्षु भी (आचार्य ने भी) पहले के भोजन पहुंचाने वाले समझ कर कमरे के अन्दर प्रवेश किया, तो वहाँ एक कुमारी को समी प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित देखकर कहा कि 'सब पुरुष लोग कहाँ गये ?'

लड़की ने उत्तर दिया—वे लोग अन्य काम में व्यस्त हैं, इसलिये मैं आई हूँ। लड़की (आचार्य के भोजन कर लेने के बाद भी) बहुत देर तक बैठी रही। आचार्य ने कहा—'अब तुम जाओ।' लड़की ने कहा 'अभी आकाश में पाँच प्रकार के रंग वाले आच्छन्न मेघों से वर्षा हो रही है। यह बन्द हो जाय तो जाऊँगी। यह कह कर बहुत देर तक वहीं बैठी रही, जब तक सूर्य अस्त न हो गये।

लड़की ने कहा—मुझे रास्ते में साथ चलने वाले साथी नहीं हैं, वस्त्र एवं आभूषण को देख कर मेरे प्राण जाने का डर है। आचार्य ने भी यह सच मान लिया और उसको वहीं पर सोने की व्यवस्था की गई। लड़की रात को भयभीत होने के बहाने चिल्लायी। फिर उसे कुछ समीप सोना पड़ा। विषय की समीपता से उन दोनों का शरीर मिल गया[2]।

---

१ पदकर के अनुसार लड़की को सेविका के रूप में स्वीकार करने के लिए उसकी माँ ने पहले से ही आचार्य से अनुमति माँगी थी। आचार्य ने भी उसे स्वीकृति दे दी थी'

(पद० ई० पृ० ८०)

२ कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि वहाँ उस लड़की को आचार्य ने अपनी कर्म-मुद्रा के रूप में योग्य बनाने के लिए सामान्य दीक्षा भी दी। क्रमशः अभिषेक एवं तन्त्र की दीक्षा देकर सन्तति परिपाक कर्म-मुद्रा के रूप में सेवन किया।

(पदकर इ० पृ० ८०)

उन्होंने (आचार्य ने यौगिक) प्रयोग किया। चार प्रकार के महासुख उत्पन्न करके सभी मार्ग क्रमशः आरूढ़ हो गये। दूसरे दिन से लड़की अपनी माँ के पास जाना छोड़ कर वहीं बैठने लगी। दोनों का भोजन साथ आने लगा। इस प्रकार उन दोनों को वहाँ रहते एक वर्ष पूरा हो गया और एक बच्चा भी हो गया।

उधर राजा उस नर्तकी से पूछ-ताछ करते रहे, पर उसने साफ-साफ नहीं बतलाया। इस प्रकार तीन साल बीत गये जब नर्तकी ने राजा से कहा—

'हे राजन्! आपकी आज्ञा पूर्ण हो गई है। आप खुश रहें। राजा ने कहा—यदि ऐसा है, तो तीन दिन के बाद उस भिक्षु को मेरे पास ले आने का कार्य करो, ऐसा तुम अपनी पुत्री से कहो। राजा सालिपुत्र नगर के सभी लोगों को साथ लेकर उस भिक्षु की ओर चला। उधर भिक्षु (आचार्य) ने लड़की से पूछा कि अब हम लोगों को यहीं रहना चाहिये या और जगह जाना चाहिये?

लड़की ने उत्तर दिया—हम दोनों के इस खराब काम की सब निन्दा कर रहे हैं, यहाँ से अन्यत्र चला जाय तो अच्छा होगा।

(दोनों जाने के लिये तैयार हुए) लड़की ने अपने बच्चे को उठाया और मदिरा का तुम्बा (पात्र विशेष) लिये दोनों चल दिये। रास्ते में राजा (सालिपुत्र के नागरिकों सहित) से भेंट हो गई। राजा ने हाथी के ऊपर से उतर कर (भिक्षु से] कहा—

भिक्षु जी आपके चीवर के अन्दर क्या है? यह लड़की आपकी क्या है?

भिक्षु ने उत्तर दिया—चीवर के अन्दर छोटे बच्चे हैं, और मदिरा का तुम्बा है। यह लड़की हमारी पत्नी है।

राजा—जब मैंने आपको निमंत्रण दिया, तो आप ने कहा था कि—तुम पापी के पास मैं नहीं आऊँगा। अब तुम पुत्र एवं पत्नी से क्या करोगे? तुम स्वयं एक पापी हो।

आचार्य ने कहा—मुझे कोई दोष नहीं है, तुम (व्यर्थ) अपवाद मत करो।

पुनः (राजा आदि) पूर्ववत् कहने लगे, तो आचार्य ने छोटे बच्चे और[1] मदिरा के पात्र तुम्बा-जो चीवर में बाँध कर रखे थे, भूमि पर पटके। पृथ्वी देवी भयभीत हो गई और भूमि फट गई; वहाँ से पानी उभर आया[2]। उस पानी के अन्दर बच्चे और पात्र (तुम्बा) वज्र और घण्टा बन गये[3]। वे स्वयं श्री चक्र संवर के रूप में परिणत हो गये और लड़की वज्रवाराही के रूप में। सपरिवार राजा (एवं सालिपुत्र की जनता जहाँ एकत्र थे) के ऊपर आकाश में चक्रसम्वर-सवज्र-घण्टा युगनद्ध रूप धारण कर बैठे।

---

१ इन्हें दो बच्चे हो चुके थे—एक बच्चा और एक बच्ची।

२ कहीं—मदिरा उभर आने की बात लिखी थी—पढ़कर, पृ० ८०।

३ कहीं कहीं—तुम्बा वाराही, लड़की घण्टी और लड़का वज्र बने। (पदकर—ई०, पृ० ८०-८१)

सब लोग आकाश की ओर देखकर आचार्य की शरण में जाते उनसे प्रार्थना करने लगे। पर उनके वज्रक्रोध समाधि से व्युत्थित न होने के कारण राजा और अन्य नागरिक भूमि फट कर निकले पानी में डूब-डूब कर मरते जाने लगे थे। आर्यावलोकितेश्वर वहीं आ पहुँचे और फटी भूमि पर पैर रख कर पानी उभारने से रोकने लगे। राजा और प्रजा को राहत मिली।

पुनः लोगों ने गुरु (घण्टापा-आचार्य) से प्रार्थना की तो उन्होंने (समाधि से उठकर) 'हुँ' शब्द को ध्वनित किया। इससे सभी (भयंकर पृथ्वी) पानी (का बाढ़) अदृश्य हो गया। राजादि सभी लोगों ने उनसे क्षमा की याचना की। आर्यावलोकितेश्वर की भूमि भी पत्थर की मूर्ति होकर वहीं स्थिर हो गई। कहा जाता है कि आज भी (अभयदत्त श्री के समय में भी) उस मूर्ति के पैर के नीचे से पानी बहता है। उसके बाद आचार्य ने राजा आदि को अनेक प्रकार के उपदेश दिये। उपदेश इस प्रकार हैं—

> जैसे ओषधि एवं विष में ही स्वभाव एक होने पर भी, फल दो तरह के होते हैं, वैसे ही पक्ष-प्रतिपक्ष दोनों भी; स्वभावतः एक हैं भिन्न नहीं हैं, पण्डित जानकर त्यागता नहीं, बाल-मूढ़ लोगों को ज्ञान न होने से, पंच विष द्वारा संसार में भ्रमित होता है।

यह कहने पर, राजादि जन समुदाय के लोगों में, जो आचार्य के प्रति सर्वथा के लिये श्रद्धा निवृत्त हो गये थे सब लोग समान रूप से श्रद्धालु हो गये। इस घटना से अपरिमित सत्व मार्ग आरूढ़ हो गये। सब लोगों ने उन्हें 'घण्टापा' कहना आरम्भ कर दिया।

(कहा जाता है कि) उस लड़की ने इनको इससे पूर्व छः जन्मों में शील से भ्रष्ट किया। इस जन्म में भी उसने यही करने की चेष्टा की थी, परन्तु आचार्य धर्मधातु के रस में सभी द्वैत-विकल्प खो चुके थे और जिसके कारण उनकी सन्तति (तन्त्र) बहुत परिशुद्ध हो चुकी थी। इसलिए बाधा की जगह उनके लिए ये परम सहायक सिद्ध हुए। पुत्र वज्रपाणि थे। वह लड़की भी पूर्व जन्मों में (जब-जब इन आचार्य के सम्पर्क में आई इनको लाभ सत्कार से पूजती रही जिसके कारण उसने भी मलविशुद्ध होकर साथ फल की प्राप्ति की।

इस प्रकार गुणसम्पन्न आचार्य घण्टापा (स्वपत्नीक) इसी शरीर द्वारा खेचर भूमि चले गये।

गुरु घण्टापा (घण्टीपा) का वृत्तान्त समाप्त

५३. गुरु जोकिपा (योगीपा) का वृत्तान्त

गुरु जोगीपा (जोकिपा, योगीपा) ओदन्तपुरी के रहने वाले थे और जाति के चाण्डाल थे। उनके गुरु शबरपा थे।

ये बड़े उद्यमी थे, पर प्रज्ञा की इनमें बड़ी कमी थी। एक समय गुरु शबरपा उनके पास आ पहुँचे। उन्होंने हेवज्र (के मण्डल में) जोगीपा को अभिषेक प्रदान करके उत्पत्ति एवं सम्पन्न-क्रम की दीक्षा दी और तदनुसार उन्हें भावना करने को कहा। पर (गुरु के उपदेश का) अर्थ वे नहीं समझ पाये। उन्होंने गुरु से प्रार्थना की कि 'हे गुरु जी, मेरे द्वारा भावना सम्भव नहीं हो रही है। अतः इसके अतिरिक्त मुझे शरीर एवं वाणी के द्वारा कुछ पुण्य करने का उपाय बतलायें।'

गुरु ने उन्हें 'हेरुक' का जप सिखाया और कहा कि, जाओ तुम चौबीस महा तीर्थ स्थानों में जाकर इसकी (साधना करो) उन्होंने भी वैसा ही किया। बारह वर्ष में (चित्तादि) मल विशुद्ध होकर महामुद्रा परम सिद्धि का उन्हें लाभ हो गया।

अन्त में उन्होंने कुछ अवदान भी कहे, और पाँच वर्षों तक जगत् कल्याण करने के बाद उसी शरीर द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु जोगिपा का वृत्तान्त समाप्त

५४. गुरु चलुक का वृत्तान्त

गुरु चलुक का वृत्तान्त इस प्रकार है—इनका देश मङ्गलपुर था और जाति के वह शूद्र थे। उनके गुरु मैत्रीपा थे।

ये अत्यन्त निद्रा प्रिय थे, सब समय नींद के वशीभूत होकर कोई भी उद्यम नहीं कर पाते थे। एक दिन वे सांसारिक व्यथा से दुःखी होकर एक वृक्ष के मूल में बैठे थे। जब उनके पास एक योगी आ पहुंचे। योगी ने उनसे कहा—तुम यहाँ क्या करने बैठे हो?

चलुक ने उत्तर दिया—मैं संसार से मुक्ति पाने के लिये एक धर्म साधना करने के लिये सोच रहा हूँ। परन्तु किसी धर्मोपदेशक आचार्य से भेंट नहीं हो पाई। आवरण—(मल के बाहुल्य) स्वभाव के कारण नींद के वशीभूत होकर उद्यम नहीं कर पाता अतः आप मुझे धर्मोपदेश भी दें साथ ही यदि नींद कम होने का उपाय न दें, तो कोई लाभ नहीं हो पाएगा।

योगी मैत्रीपा ने उनसे कहा—तुम्हें अभिषेक दिया जायगा, जिससे तुम्हारी नींद भी कम हो जायगी और संसार से भी मुक्ति पाओगे। उन्होंने चलुकि को चक्रसँवर (के मण्डल में प्रवेश करा कर). अभिषेक दिया। तथा गंभीर 'सम्पन्न क्रम, नाडी एवं वायु की दीक्षा इस प्रकार दी—

'दृश्य भव (जगत्) समग्र रूप से अपने काय–वाक् एवं चित्त इन तीनों को समाविष्ट करो। ललना एवं रसना को मध्य अवधूति में प्रवेश कराओ। काय एवं अवधूति झील के रूप में और चित्त को हंस के रूप में मान कर उस झील के अन्दर तैरते हंस की भावना करो। इससे तुम्हारी निद्रा भी कम हो जायगी और अवधूति में प्रवेश हो जाने से निर्विकल्प (ज्ञान) स्वतः उत्पन्न होने लगेगा। इस प्रकार (मैत्रीपा ने) उनको (अभिषेक) एवं दीक्षा प्रदान की।

वह (चलुकि) भी तदनुसार भावना करते रहे। नौ वर्ष में उनका समस्त मल (आवरण) विशुद्ध हो उन्हें महामुद्रा परमसिद्धि का लाभ हुआ (उनका अवदान)—

'सभी दृश्य जागतिक धर्म एक काय-वाक्-चित्त में समाविष्ट हैं,
वह भी ग्राह्य-ग्राहक अकल्प तीन नाड़ियो में समाविष्ट हैं।
दोनों को अवधूति में समाविष्ट कर झील के रूप में भावना की, तो
विज्ञान हंस उसके रहस्यात्मक झील बन गये हैं।'

इस प्रकार अवदान-उक्ति के बाद उसी शरीर के द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु चलुक का वृत्तान्त समाप्त

५९. गुरु गोधुरपा का धृत्तान्त

गुरु गोंडरि (गोधुर) का वृत्तान्त इस प्रकार है—गोधुर या गोंडर का अर्थ है, चिड़ीमार (व्याध)। वे सदा दोल (चिड़िया मारने का एक औजार) लेकर पक्षी मारने जाते थे। एक समय (वे पक्षी मारने जा रहे थे) उनके पास एक योगी आ पहुँचे। योगी बोले—हे कुल पुत्र ! तुम क्या रहे हो ?

व्याध ने कहा—हे आर्य ! पूर्व दुष्कर्म संचय के कारण मेरा गोंड जाति में जन्म हो गया। जीविका के लिये सदा प्राणियों की हिंसा करनी पड़ती है।' इसी से जीना पड़ता है। इससे दुःखी होकर बैठा हूँ।

योगी ने कहा—

कर्माकर्म से इस जन्म में दुःखी, परलोक इससे भी
अधिकतर दुःख,
सदा सुखी सद्धर्म, अहो क्यों नहीं साधते ?।

गोंडरि ने कहा—

हे गुरु ! मेरे जैसे पापी व्यक्ति के लिये कृपादृष्टि हो जाय यदि आप दीक्षा दें, तो साधना क्यों नहीं कर सकता। इस पर योगी ने उन्हें प्रभाव-संक्रमण का अभिषेक दिया और उनको वे उनके आलम्बन के अनुरूप एकालम्बन की दीक्षा दी। (वह इस प्रकार है)—

'लोक में जितना भी शब्द हो, वह सब पक्षी की आवाज के रूप में तथा पक्षी की आवाज और अपने चित्त का आलम्बन दोनों को एक करके भावना करो।'

(उन्होंने वैसा ही किया, तो) शब्द के पीछे (उनके चित्त) दौड़ने से (वे अच्छी तरह भावना नहीं कर सके)।

पुनः (आचार्य ने उन्हें यह उपदेश दिया)—

मीठे शब्द वाली कोयल आवाज ध्वनित करती है, (पर) सभी शब्द शब्द-मात्र एक ही हैं,

'इसी प्रकार शब्द और शब्द ग्राहक के व्यापकधर्मता स्वभाव की भावना करो।'

इस वचन के अनुसार भावना की, तो सभी शब्दों की ध्वनि एवं (उनकी) शून्यता के अभेदत्व का ज्ञान होने लगा। नौ वर्ष में उनके चित्त का सभी मल (आवरण) विशुद्ध हो गया और महामुद्रा परम सिद्धि प्राप्त हो गई। अपनी अवदान की उक्तियाँ भी बहुत सी उन्होंने कह डालीं। एक सौ वर्षों तक इसी लोक में बैठे अपरिमित सत्वार्थ किये। अन्त में तीन सौ शिष्य-परिवार के साथ इसी शरीर के द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु गोधुरि का वृत्तान्त समाप्त

५६. गुरु लुचिकपा का वृत्तान्त

गुरु लुचिकपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—'लुचिक' का अर्थ है—(खरगोश की तरह) नीचे बैठने-उठने वाला। ये पूर्वी बंगाल के रहने वाले जाति के ब्राह्मण थे।

पूर्वी बंगाल के एक ब्राह्मण का बहुत से आदमी मर जाने के दुःख से संसार से उनका लगाव नहीं रहा। एक निर्जन स्थान में जाकर कुछ धर्म-साधना करने को सोचा, तो दीक्षा आदि न रहने से वे सोचने लगे कि मुझे एक धर्मोपदेश देनेवाले गुरु कब मिलेंगे, ऐसे गुरु से भेंट हो जाय (इत्यादि)।

एक दिन एक योगी वहाँ आये, तो वह बड़े प्रसन्न हुए और योगी के चरणों में उन्होंने प्रणाम किया।

योगी ने पूछा कि 'मुझे प्रणाम करके तुम क्या चाहते हो ?

लुचिक पा—मैं संसार (के धर्मों) से मन विरक्त (हो) कर कुछ करने को सोच रहा था, पर दीक्षा (उपदेश) देने वाले गुरु से अभी भेंट नहीं हो पाई। आज (आप जैसे) गुरु से भेंट हो गई—अब दीक्षा ग्रहण करूँगा।

योगी ने (उनकी पात्रता देखा और) उन्हें चक्रसंवर (के मण्डल में) अभिषेक दिया, उत्पत्ति एवं सम्पन्न-क्रम की दीक्षा भी दी। तदनुसार उन्होंने भी बड़े प्रयत्न के साथ भावना (साधना) की। बारह वर्ष में उत्पत्ति एवं सम्पन्न-क्रम के युगनद्ध साक्षात्कार से परम सिद्धि प्राप्त उनका नाम 'लुचिक' उसी समय से प्रसिद्ध हुआ। उनकी उक्ति (दोहा)—

संसार और निर्वाण दोनों, भिन्न रूप से स्थित नहीं देखता,
यही महा मुक्ति है, क्षुद्रत्वेन ग्रहण से पार करना दुष्कर है।

यह कह कर उसी शरीर द्वारा वह खेचरभूमि चले गये। (जाते समय) आकाश में स्थित होकर अनेक अवदान कहे और वहीं से अन्त में वह अदृश्य हो गये।

गुरु लुचिक पा का वृत्तान्त समाप्त

dscn4390.jpg (1704x2272x24b jpeg)

८७. गुरु नगुणपा का वृत्तान्त

गुरु नगुणपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—'नगुण' का अर्थ, बिना गुण वाला। ये पूर्वी भारत के रहने वाले थे और जाति के शूद्र।

पूर्वी देश में एक शूद्र परिवार में बच्चा पैदा हुआ। जन्म-उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। लालन-पालन के बाद जब वह बड़ा हुआ तो आलसी और निद्राप्रेमी हुआ। लोक कर्म करना उसके ख्याल में भी नहीं आता था। (सब परिवार के लोग) समान रूप से यह कहने लगे कि—इस तरह के आलसी व्यक्ति अच्छा या बुरा कोई भी काम नहीं कर सकते, इस तरह के बेटा की अपेक्षा कोई फल ही पैदा होता, तो कम से कम खाया तो जा सकता। इस तरह से सब लोग उसकी निंदा किया करते थे। इससे वह बड़े दुःखी हो गये। एक दिन वह एक निर्जन जगह में जा बैठे थे कि उनके पास एक योगी आ गये। योगी ने उनसे कहा—तुम नगर से भिक्षा माँग कर मुझे खिलाओ।

आलसी व्यक्ति ने कहा—'यह मुझसे नहीं पूरा हो पाएगा।' वह भूमि से उठ भी नहीं पाया।

योगी को इसे देखकर बड़ी दया आ गयी। स्वयं उसने उस आलसी को खाना खिलाया और कहा कि—तुम्हारे पास कौन गुण है ?

आलसी—'आर्यवर, मेरा नाम ही नगुण है, मेरे पास कोई गुण नहीं है।' यह कह कर [उनका दिया हुआ] खाना भी भूमि पर लेट कर खाने लगे। यह देखकर योगी ने उनसे कहा—तुम मरने से नहीं डर रहे हो ?

आलसी—डर तो लगता है, पर कोई उपाय नहीं है।

योगी—यदि साधना कर सकते हो, तो उपाय मैं देता हूँ।

आलसी—यदि सो कर (लेट कर) कोई काम होता हो, तो कर सकता हूँ।

योगी ने उन्हें अभिषेक प्रदान किया और दृश्य,शून्यता दोनों के युगनद्ध भावना की दीक्षा इस प्रकार दी—[दोहा]

ग्राह्य-ग्राहक कोई भी सिद्ध नहीं है, न मानने से सभी जीव,
दुःख से पीड़ित हैं, दयनीय हैं, वह भी आद्यतः सिद्ध नहीं हैं।
दृश्य और शून्यता की अभिन्नता, प्रभस्वरता अन्दर से उत्पन्न करके
अलग जैसे आचरण से, नगरों को सदा छोड़ना चाहिये।

इस वचन के अनुसार उसने भी भिक्षा माँगते हुए साधना की। फलतः उसे युगनद्ध प्रभस्वरता का ज्ञान प्राप्त हो गया और सिद्धि का लाभ हुआ। फिर वह सर्वत्र घूमते रहे, लोग उनसे पूछते कि—आप कौन हैं ? वह बिना कुछ कहे उन्हें

देखते रहते थे। लोग (उनकी दशा को दयनीय कहते। वह योग्य पात्रों को दृश्य एवं शून्यता की अभिन्नता का मार्ग दिखलाते रहे।

अन्त में जैसे समुद्र में नाव टूट जाता है, उसी प्रकार के भ्रान्ति जाल विच्छिन्न कर उन्होंने महामुद्रा परम सिद्धि प्राप्त की और उसी शरीर के द्वारा वे खेचरभूमि चले गये।

गुरु नगुणपा का वृत्तान्त समाप्त

५८. गुरु जयानन्द का वृत्तान्त

गुरु जयानन्द (जयानन्दि) का वृत्तान्त इस प्रकार है—वह बंगाल के रहने वाले थे और ज्ञाति के ब्राह्मण।

बंगाल के एक राजा के एक ब्राह्मण मन्त्री थे। एक समय उस ब्राह्मण ने (तांत्रिक धर्म ग्रहण किया (दीक्षा ग्रहण किया)। गुह्य रूप से वे मन्त्र साधना करते रहे। उनको (मन्त्र) प्रभाव प्राप्त होते किसी ने नहीं जाना। वह सदा (सामान्य) बहुत सी बलि दिया करते थे। इस घटना को अन्य मन्त्री सहन नहीं कर सके और वे जा कर राजा से कह आये। राजा ने भी उस (साधक मन्त्री) को पकड़ कर लोहे की जंजीर में बाँध कर कारा में डाल दिया। मंत्री ने कहा—मैंने महाराज के मुट्ठी भर द्रव्य का भी नुक़सान नहीं किया। अतः मुझको इस जंजीर से मुक्त करो। पर राजा ने उनकी कुछ नहीं सुनी।

उसके बाद वहाँ बलि के समय में उसे खाने के लिये बहुत कौआ आ गये। पर वहाँ (उस दिन बलि देने वाले) वह (मन्त्री) नहीं थे। और बलि का कोई प्रबन्ध नहीं था)। इससे कौआ लोग बड़े क्रुद्ध हुए और अपनी पूरी सेना के साथ राजमहल गये, सभी लोगों का सिर नोचने लगे और चोंच मारने लगे। (राजा आदि सब लोग आश्चर्य चकित होकर रह गये उनमें से) एक चिड़िया की भाषा जानने वाले थे उन्होंने देखा कि कौवा लोग यह कह रहे हैं कि—हम सबके माता-पिता के समान ब्राह्मण को इस राजा ने बन्द कर दिया है। यह वृत्तान्त राजा ने सुना तो बोला कि यदि ऐसा है, तो वह (मन्त्री) सच्चा है, उस मन्त्री से क्षमा माँगें और उससे कहा कि पक्षियों को लौटाओ। उन्होंने पक्षियों से कहा, तो सब कौवे लौट आए।

इस घटना से उस मन्त्री के प्रति बड़ा विश्वास जम गया और प्रतिदिन पाँच सौ सेर चावल बलि की सामग्री के रूप में दिया जाने लगा। मंत्री का नाम भी सर्वत्र 'जयानन्द' विख्यात हो गया।

उनकी मुखोक्ति (दोहा)—

सहज ज्ञान उसका गुरु कृपा से **सम्यक् ज्ञान** हो गया
महा सुसंवर मन्त्री होकर, संसार दास के रूप में नहीं रहूँगा।

स्वतः प्रकाश धर्मता राजा द्वारा, ग्राह्य-ग्राहक द्वैत शत्रु का प्रहाण किया,
संसार-सुख के प्रति रति नहीं है, अहो अज्ञान जीव जगत 'अहो यह जय कहता हूँ।'

अन्त में अनेक जगत् कल्याण साध कर सौ वर्ष बाद वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु जयानन्द का वृत्तान्त समाप्त

५९. गुरु चपरिपा का वृत्तान्त

गुरु चपरिपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—ये जाति के कहार (खुरपा, छोड़्वा-पूड़ी बेचने वाले) चम्पक के रहने वाले थे।

अत्यन्त दरिद्रता के कारण उनके पास पहनने के लिये कपड़ा कटुल (सम्भवतः लङ्गोटी) ही था। एक धनी घराने से जूड़ी की बहँगी (भार) लेकर बेचते थे। उसमें से जो मुनाफा मिलता उसी से जीविका चलाते थे। (एक दिन) जो बहँगी तेल से पकी पूड़ी की ले आए उसे न बेचकर स्वयं खाना आरम्भ कर दिया। आधा खा ही चुके थे, कि आर्य अवलोकतेश्वर एक भिक्षु का रूप धारण करके उनके पास आये। उनको देखते ही चपरिपा को बड़ी श्रद्धा हुई और प्रणाम कर आधा खाये हुए भार को उन्हें दे दिया। भिक्षु ने (उसको ग्रहण करते हुए) कहा कि—तुमने यह कहाँ से पाया ?

उसने (चपरिपा ने) (सभी वृत्तान्त) सहित सुना दिया।

भिक्षु ने कहा—हम दोनों दायक एवं पुरोहित के रूप में हैं। मैं अपने दायक को एक धर्मोपदेश करना चाहूँगा। उस व्यक्ति ने भी (धर्मोपदेश सुनने के हेतु) मण्डल पुष्प आदि अर्पित करके (सुनना आरम्भ किया)।

निर्माणिक (भिक्षु) ने–त्रिशरण, चित्तोत्पाद आदि से उन्हें अधिष्ठित किया, षड़-अक्षर (मन्त्र) की दीक्षा दी। उसने भी बड़ी नम्रता के साथ (उसे ग्रहण किया और) भिक्षाजीवी होकर साधना आरम्भ कर दी।

एक समय, पहले के भार दिलाने वाले स्वामी उनके पास आये और कहने लगे कि—मेरी उस बहँगी या भार का दाम चुकाओ।

उस (चपरिपा) ने कहा कि—मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। उस भार स्वामी ने उसे पकड़कर मारना प्रारम्भ किया, तो उसने कहा कि भार केवल मैंने अकेले नहीं खाया। हम गुरु-शिष्य दोनों ने खाये। ऐसी दशा में मुझ अकेले को क्यों मार रहे हो ? (वे मारते गये और चपरि उक्त शब्द बोलते गये, तो) उस तरह के शब्द दीवार (वृक्ष) आदि से भी निकलने लगे। (इससे बहँगी का स्वामी) बहुत अचंभित हुआ और यह कह कर कि—मेरी बहँगी तुम लेकर जाओ, उन्हें वहीं छोड़ दिया। (चपरिपा) एक विहार में गये और (वहाँ स्थित) अपने इष्टदेव की मूर्ति से बहँगी का दाम माँगा, तो (उस मूर्ति ने) सौ तोला सोना उनको दे दिया। उस सोना को लेकर उन्होंने उस गृहपति के पास जाकर उसकी बहँगी का दाम चुका दिया। (मार खाने से) उनके जो पूर्वसंस्कार के कुछ आवरण थे वह भी परिशुद्ध हो गये। वह सोचने लगे कि मेरा गुरु आर्य ही है।

पोतल गिरि (जहाँ आर्य लोकेश्वर निवास करते हैं) जाने की तैयारी करके वह तो चले रास्ते में जहाँ काँटों का वन था, वहीं उनके पैर में काँटा चुभ गया।

इससे बड़ी पीड़ा होने लगी। उन्होंने आर्य को स्मरण कर बड़ा विलाप किया। आर्य ने साक्षात् प्रकट होकर उनसे कहा—'तुम्हारा गुरू मैं हूँ। अब तुम स्वतंत्र होकर यहाँ से वापस जाओ। विनेय लोगों को (सम्यक् मार्ग में) आनीत करो।

इससे वह अत्यानन्दित हुए और आकाश में ऊपर उड़ गए और चम्पक लौट गये। (चम्पक के) सब लोगो ने इसे देखा तथा आश्चर्यचकित होकर रह गये। (बाद में) इनसे उपदेश के लिये प्रार्थना की गई तो—

इन्होंने सब लोगों को दृश्य—एवं शून्यता के अभिन्नता की दीक्षा दी। इसके बाद सर्वत्र इनका नाम गुरु चपरिपा विख्यात हो गया।

अन्त में इसी शरीर द्वारा वह खेचरभूमि चले गये।

गुरु चपरिपा का वृत्तान्त समाप्त

६०. गुरु चम्पकपा का वृत्तान्त

गुरु चम्पकपा का वृत्तान्त इस प्रकार है, यह चम्पक (बिहार का भागलपुर) के रहने वाले थे। 'चम्पक' (एक फूल का नाम है) यही नाम नगर के लिए भी पड़ गया। जाति के यह क्षत्रिय थे।

चम्पक के एक राजा राज्य-सम्पत्ति से परिपूर्ण थे। वह सुन्दरता के अभिमान एवं राजसुख के बाहुल्य से उन्मद होकर परलोक आदि का विचार तक नहीं करते थे। वे चम्पक पुष्प के उद्यान में पुष्पनिर्मित महल में बैठते थे और उनके रहने के आसन (गद्दी) एवं तकिया आदि भी अति सुगन्धित पीले रंग के चम्पक पुष्प से बने हुए होते। उस महल में रहते समय एक दिन एक योगी वहाँ आये और उनसे भोजन की याचना की तो राजा ने भी नम्रता से उनका पैर धोया और उन्हें आसन पर बैठाया, जलपान अर्पित किया।

योगी ने कुछ धर्मोपदेश दिया। सभी राज परिवार ने (बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति के साथ) उन्हें वहीं पुरोहित के रूप (राजगुरु के) रूप में बैठने के लिये प्रार्थना की।

योगी ने भी इसे स्वीकार किया और वहीं बैठे।

(एक दिन) राजा ने कहा—हे योगी ! आप बहुत से देश-देशान्तर घूमे हैं। इस प्रकार के पुष्प एवं हमारे जैसे अन्य राजा कहीं देखे हैं ?

योगी ने उत्तर दिया—

> चम्पक पुष्प उत्तम गन्ध से, युक्त हो पर भी,
> अपने शरीर से वैसे नाना गन्ध नहीं निकलते हैं।
> राजा का राज्य अन्य राज्य से विशिष्ट होने पर भी,
> मृत्यु आते समय वह सब भी विनष्ट हो जायगा।

इस कथन के अनुसार राजा ने अपने शरीर की परीक्षा की, तो स्वतः उससे घृणा उत्पन्न हो गई और वह विरक्त हो गये। पुनः उस (योगी) से उपदेश के लिए प्रार्थना की।

योगी ने उन्हें प्रथमतः कर्म-फल की देशना दी, उसके बाद अभिषेक दिया। उत्पत्तिक्रम एवं सम्पन्न क्रम मार्ग की भी दीक्षा दी। परन्तु राजा को सभी विकल्प पुष्पादि की ओर चले जाने से भावना में अरुचि हुई। (आचार्य ने) विकल्प मार्ग के रूप में उपनीत (उपयोग) करने का उपदेश इस प्रकार दिया।—

> आभासित होते ही शून्य हो जाने से, गुरु का उपदेश पुष्प है,
> (उसमें) स्वचित्त मधुभक्षी बैठते हैं, अनास्रव अमृत मधु ये तीन
> एक ही स्वभाव में भावना करने से, फल महासुख की प्राप्ति होती है,
> छठे वज्रधर का वचन है, निःसन्देह हो, भावना करो।

इस कथन के बाद (उसने भी) तदनुसार बारह वर्षों तक भावना की, तो (गुरु) उपदेश, स्वचित्त की धर्मता और अनुभव इन तीनों की अभिन्न एकरसता की ज्ञानरूपी सिद्धि प्राप्त हो गयी। उस समय से उनका नाम 'सर्वत्र 'चम्पक' विख्यात हो गया।

अपनी रानी सहित अपरिमित परिवार को उन्होंने धर्मोपदेश दिये, अन्त में उसी शरीर द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु चम्पक पा का वृत्तान्त समाप्त

६१. गुरु भिक्षनपा का वृत्तान्त

गुरु भिक्षनपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—'भिक्षन' का अर्थ है, भिक्षा माँगने वाला। यह सालिपुत्र देश के रहने वाले और जाति के शूद्र थे।

सालिपुत्र नगर के एक शूद्र जाति के व्यक्ति सारे धन-द्रव्य क्षीण होकर गाँवों और नगरों में भिक्षा माँग (कर अपनी जीविका चला रहे) थे। एक समय भिक्षा न मिलने से बड़ी क्षीणता के साथ एक निर्जन जगह में जा बैठे। उस समय एक डाकिनी उनके पास आकर कहने लगी कि—'तुम यहाँ क्या कर रहे हो?'

उसने भी (अपना सब) सत्य वर्णन कह दिया।

(डाकिनी) ने कहा—मेरे पास इष्ट प्राप्ति का उपाय है।

शूद्र—वही आप हमें दें।

डाकिनी—तुम्हारे पास दक्षिणा के लिए क्या है?

शूद्र ने (अपने पास कुछ न देखकर) मुँह से एक ऊपर और एक नीचे के दाँत रखकर शेष सब निकाल कर डाकिनी को अर्पित कर दिया।

डाकिनी ने उनके अध्याशय एवं निष्कपट पात्रता देखकर अभिषेक प्रदान किया और प्रज्ञोपाय की युगनद्ध दीक्षा दी।

भिक्षनपा ने भी तदनुसार भावना की, तो सात वर्ष में उन्हें सत्य का साक्षात्कार हुआ। अनेक अनास्रव गुण प्राप्त होकर जीव उद्धार अर्थ घूमते रहे। उनका नाम 'भिक्षनपा' प्रसिद्ध हो गया। अनेक वर्ष बाद इसी शरीर द्वारा वह खेचर भूमि चले गये।

गुरु भिक्षनपा का वृत्तान्त समाप्त

६२. गुरु घिलिपा का वृत्तान्त

गुरु घिलिपा का वृत्तान्त इस प्रकार है; यह बैसतपुरी के रहने वाले जाति के तेली थे।

सतपुरी नामक नगर में एक व्यक्ति तेल बेच कर अपनी जीविका चला रहा था। उसने तेल बेचने का नाटक किया, तो व्यापार बहुत अच्छा हुआ और 'कुबेर' के समान धन-धान्य की प्राप्ति हुई। वे काम-भोगों को भोगते हुए दिन बिता रहे थे। उन्होंने चौरासी प्रकार के व्यंजन, बारह प्रकार के खाद्य, पाँच प्रकार के पेय आदि (जो उस समय इन पदार्थों का सेवन केवल राजा लोग ही किया करते थे) राजा की दृष्टि से बच कर भोग रहे थे।

एक समय 'महन' नाम के पण्डित उनके यहाँ पहुँचे। पण्डित ने उनसे बहुत से सांसारिक धर्मो के दोष और मुक्ति के गुण कहे। (व्यापारी ने) श्रद्धापूर्वक उनसे धर्मोपदेश की याचना की और पूज्य गुरु के रूप में उन्हें वहीं बैठाया। एक उस पण्डित ने उन्हें तेल निकालने की प्रयोगशाला में देखा और व्यापारी से कहा कि— कल्पों से कल्पान्तर तक तेल पेरा, किन्तु मुक्ति नहीं आने वाली है।

व्यापारी ने उत्तर में कहा—हे गुरु यदि ऐसा है, तो हमें मुक्ति पाने के उपाय बतलायें।

(गुरु ने) उन्हें अभिषेक दिया और निमित्त-स्वतः प्रकाश की दीक्षा इस प्रकार दी। (दोहा)—

स्वकाय रूपी तिल से, विकल्प रूपी तेल पेर कर;
चित्त रूपी पात्र में डाले, दृश्य और शून्यता के अभेद बत्ती से।
संवित्ति रूपी अग्नि जलायें, अविद्या अन्धकार प्रहाण से,
अनुत्तर मुक्ति सुख में स्थिर हो जायँगे।

उन्होंने भी बड़ी श्रद्धा के साथ उक्त वचनों के अनुसार भावना की, तो छः वर्षों में उत्पत्ति एवं सम्पन्नक्रम के युगनद्ध तत्व का अवबोध पाकर सिद्धि प्राप्त हो गये। फलतः उनके शरीर से चारों ओर प्रकाश फूटने लगा और यह सब लोगों ने देखा। लोगों ने यह घटना राजा को सुनाई। राजा ने भी इसका पता लगाने के लिये एक दूत भेजा, उस दूत ने भी वैसा ही देखा। राजा भी कहने लगे कि—'अनास्रव सुख भोगने वाले राजा के समान अन्य कोई नहीं हो सकता'।

इस प्रकार सब लोगों में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा हो गई। (घिलिपा) ने भी उन लोगों के आशा—अध्याशय के अनुसार उपदेय दिया। अन्त में बहुत से शिष्य परिवार के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु घिलिपा का वृत्तान्त समाप्त

dscn4400.jpg (1704x2272x24b jpeg)

६३. गुरु कुम्भरिपा का वृत्तान्त

गुरु कुम्भरिपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—'कुम्भरि' का अर्थ है, कुम्भकार या मिट्टी के वर्तन बनाने वाला। ये जोमनश्री नामक प्रदेश के रहने वाले थे। जाति के कुम्भकार थे। जोमनश्री नामक जनपद में एक कुम्भकार व्यक्ति सदा कुम्भ बना कर जीविका चला रहे थे। एक समय वह अपने काम से दुःखी होकर बैठे थे। उस समय एक योगी उनके पास आ पहुँचे। योगी ने भिक्षा माँगी। कुम्भकार ने भी सादर भोजन प्रदान किया और कहा—

हे गुरु! मैंने इस प्रकार के काम को बड़े लगन से किया, पर इससे कोई लाभ नहीं हुआ। इस काम का अन्त कभी नहीं आया, इससे मैं दुःखी होकर बैठा हूं।

योगी ने कहा—हे दायक! तुमने नहीं समझा कि इस संसार में रहने वाले जीव दुःखी के अलावा सुखी कभी भी नहीं होते। अनादि काल से अनन्त काल मात्र दुःख के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता। इससे दुःखी कौन नहीं होगा।

कुम्भकार ने निवेदन किया कि—हे गुरु आप हमें इस (दुःख) से मुक्ति के उपाय दें।

योगी ने उनको अभिषेक प्रदान किया और उत्पत्ति एवं सम्पन्न (क्रम की) दीक्षा इस प्रकार दी—(दोहा)—

अविद्या की भट्ठी को, क्लेश विकल्पों का पंक बने।
छः योनि तृष्णा उपादान चक्र के, कुम्भ ज्ञान अग्नि से जलाये।

ऐसा कहने पर उन्होंने विकल्प ज्ञापन की (परिचर्या की) दीक्षा का अर्थ समझ लिया। छः महीने की भावना से सांसारिक भ्रान्ति का मल (आवरण) विशुद्ध हो गया और सिद्धि का लाभ मिला। वे समाहित होकर बैठे, तो कुम्भ-चक्र स्वतः

घूमने लगे और यथा चाहे कुम्भ बनते गये। इस घटना को देख कर नगर के सभी लोग यह जान गये कि उन्होंने विशेष गुण प्राप्त किये हैं। सब लोगों ने उन्हें 'गुरु कुम्भकार' कहना आरम्भ कर दिया। वही नाम प्रसिद्ध हो गया।

अपने अवदान (दोहे) कह कर अन्त में उसी शरीर द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु कुम्भरिपा का वृत्तान्त समाप्त

६४. गुरु चर्वरिपा का वृत्तान्त

गुरु चर्वरिपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—यह मगध देश के एक विशेष स्थान के रहने वाले थे। जाति के वे चरग या चार्वाक थे।

मगध देश के किनारे निर्जन स्थान में एक चरग (पशुपालक या शिकारी जाति) परिवार के व्यक्ति बहुत सम्पन्न और धन-धान्य से जीवन बिता रहे थे। एक हजार भैंस, घोडे और भेंड़ आदि उनके पास अपार सम्पत्ति थी। एक दिन उसके घर वृद्ध पिता मर गये तदर्थ बहुत से दान-दक्षिणा के साथ संस्कार किया गया। अन्य किसी भी व्यक्ति की मृत्यु होती तो उसके लिये बहुत से लोग इकट्ठे होकर दान किया करते थे। वैसे अवसर पर एक समय उस जगह के आस-पास के सभी लोगों को बुला कर बहुत दिनों तक खाना-पीना आदि देना था।

जब वहाँ एकत्र सभी लोग स्नान के लिये गंगा की ओर चले गये। घर में चौकीदारी के लिये घर की स्वामिनी (पुत्र वधू) को रखा गया। उसके साथ एक तीन साल का बच्चा भी था। वे बैठे थे कि गुरु चर्वरिपा कहीं से वहीं आ पहुँचे। उन्होंने गृहणी से भोजन माँगा। लड़की सीधी सादी थी, योगी से सही बातें बता दीं।

चर्वरिपा ने कहा कि—यदि (मुझे भोजन देने से) तुम्हारे पति आदि क्रुद्ध हो (कर तुम्हें कुछ कहें) तो मेरे पास आ जाना मैं उस पार के वन में आग जला कर रहूँगा। यदि वे लोग कोप न करें तो मुझे खाना-पीना देना पड़ेगा।

लड़की ने गुरु की बात मान ली (भोजन आदि खिला दिया) योगी अपने स्थान लौट गये और लड़की वहीं सुख से बैठ गई।

क्रमशः लोग वहीं लौट कर आये और 'सास' भी आ गई। उसने देखा कि खाने की सामग्री से कुछ निकाला हुआ था। अपनी पुत्रवधू को डाँटने लगी। वधू अपने पुत्र को लेकर उस योगी के पास चली गई। जब वह योगी के पास पहुँची तो चर्वरिपा ने साधु कह कर अपने मन्त्र फूँके जल उन पर छिड़क दिए। फलतः दोनों माँ बेटा तत्काल 'स्वयंभू वज्रकाय' बन गये। उन्हें खाद्य आदि किसी की आवश्यकता न रह गई।

जब उनके पति अपने घर पहुँचे तो (पत्नी को न देखकर) पूछा तो लोगों ने कहा कि चली गई, पता नहीं कहाँ गई? सब लोगों से पूछते हुए उसकी खोज में वह क्रमशः योगी के पास पहुँचे। वहाँ पूर्व विवरण कहने लगे। उनको भी (पूर्ववत्) मन्त्र जल छिड़का गया तो वह भी पत्नी बच्चे की तरह (स्वयंभू वज्रकाय) हो गये। तीनों एक ही आसन पर बैठ गये। खोये हुए भैंस के समान उनके बहुत से भाई-बन्धु एक के पीछे एक करके वहाँ आने लगे और इनकी संख्या तीन सौ तक पहुँच गई। सब लोगों की अर्थ सिद्धि हुई।

लड़की-पुत्र को विशेष गुण इस प्रकार प्राप्त हो गये थे—वीर्य (फल) से 'खेचर सिद्धि' वज्र से (लिङ्ग से) 'सुवर्ण परिणामी औषधि, मल स्थान से रसायन ओषधि, आँख से आकाश-गमन आदि आठ सिद्धियाँ। उनका यश चारों ओर फैलने लगा तो चम्पक के राजा महिल (महिपाल) आदि बहुत से जन-समाज उन्हें देखने आये। देखा, तो राजा के मन में बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई। उन्होंने उन तीनों पुत्र सहित दम्पत्ति के लिये एक विहार और अन्य तीन सौ लोगों के लिये एक विहार बनवाये और उसका नाम 'द्रमपा' प्रसिद्ध हो गया। वहीं पर लोगों को बैठाये। उसके अन्दर दुर्बुद्धि लोग नहीं जा सकते थे, और वहाँ के पत्थर की मूर्ति की प्रार्थना आदि किया करते थे। वह स्थान बाद में एक (बहुत बड़ा) सिद्ध पीठ बन गया। वहाँ (अभयदत्त श्री) के काल में बहुत से योगी विद्यमान थे। वहाँ साधना करे तो बहुत शीघ्र सिद्धि पाई जाती है।

यह लौकिक सिद्ध थे। जो मैत्रेय बुद्ध के आने तक वहीं रहेंगे और तत्पश्चात् जीव कल्याण करेंगे।

गुरु चर्बरिपा का वृत्तान्त समाप्त

६५. गुरु मणिभद्रापा का वृत्तान्त

गुरु मणिभद्रा अथवा योगिनी भहुरि का वृत्तान्त इस प्रकार है—'आर्च' नामक नगर के एक सेठ की तेरह वर्षीया एक लड़की थी। उसका सवर्ण कुल में विवाह हुआ। पुनः अपने मायके में आई थी कि एक दिन उसके पास गुरु कुकुरिपा ने आकर भोजन माँगा। लड़की ने उनसे कहा—

इतने सुन्दर सुडौल व्यक्ति होते हुए भी आपकी जीविका भिक्षाटन एवं वस्त्र सिले चिथड़े (जो फट-फट कर बिखरा गए हों) क्यों है ? आप अपने वर्ण का एक साथी लेते, तो अच्छा होता।

(उत्तर के रूप में) योगी ने कहा—(दोहा)—

मैं तो संसार से भयभीत होकर, महासुख सम्वर मुक्ति की साधना कर रहा हूँ,
वह भी इस पुण्य आश्रय (शरीर) होते न करे, तो पश्चात् ऐसा मिलना सम्भव नहीं है।
अतः इस पुण्य—आश्रय मणिरत्न को, गृहिणी की अशुद्धि में छिपाये तो,
इष्ट प्रयोजन के विनाश नाना दुःख पायेंगे, यही जानकर मैंने गृह साथी छोड़ा।

इस कथन से लड़की में बड़ी श्रद्धा आ गयी। उसने उत्तम भोज्य प्रदान किया और कहा—

मुझे भी मोक्ष प्राप्ति के एक उपाय बतलायें।'

योगी ने कहा—मेरा घर तो श्मशान है। (यदि उपदेश) चाहती हो, तो वहीं आना।

उस (लड़की) को कोई भी काम समझ में न आता तो रात को भाग कर श्मशान में जाती। गुरु ने उस लड़की की पात्रता एवं परिपक्वता देखकर उसे श्रीचक्र संवर (के मण्डल में) अभिषेक प्रदान किया और उत्पत्ति एवं सम्पन्न क्रम की दीक्षा दी। उसने भी सात दिन तक वहीं भावना की। उसके बाद जब वह अपने पिता के घर गई तो लोगों ने बहुत से अपशब्द कहे और उसे मारना प्रारम्भ किया। लड़की ने कहा कि—तीनों धातुओं में माँ बाप न हुए हों, ऐसा कोई जीव नहीं है। जाति कुल के बड़ा होने पर भी संसार के मूल से अलग नहीं हो सकती, मैं तो गुरु की शरण लेकर मोक्ष की साधना करने वाली हूँ। (तुम लोग जो भी और जैसे भी मारना हो) मारो। मैं इन सबका मार्ग उपाय के रूप में प्रयोग करूँगी। उन

(मारने वाले) लोगों को भी कुछ श्रद्धा आई। थोड़ी देर के लिये उसे मारना-पीटना छोड़ दिया। लड़की ने भी सभी प्रकार के काम-काज त्याग कर गुरु के उपदेश का अनुसरण करती भावना करते एक साल बिताया। फिर उसके पति आ गये और उसे अपने घर ले गये।

वहाँ वे सभी लौकिक कार्य समान रूप से करती रहीं और शरीर व वचन की पक्की और पवित्र रही। बहुत मीठी बातें करती रहती थी। क्रमशः एक पुत्र और पुत्री दो सन्तानें भी हो गईं। वे दोनों भी माँ के समान सुन्दर सुबुद्धि और सदाचारी थे। सब लोग कुल सन्तान की प्रशंसा करते थे।

उस समय के गुरु से भेंट हुए बारह वर्ष हो गया था। एक दिन पानी लेने गई थीं, लेकर घर लौटते समय लकड़ी के एक खण्ड में पैर फँसकर गिरी और 'घट' टूट गया। वह वहीं बैठी आधा दिन हो गया, लौट नहीं आई। लोग उसको देखने गये, तो वह टूटे हुए 'घट' को देखते बैठी थी। लोगों ने उसे कुछ कहा, तो किसी का उसने सुना नहीं। और उसी टूटे घट अवशेष को देखती रही। सबने कहा कि यह किसी भूत-प्रेत से ग्रस्त है क्या ?

ऐसी दशा में जब सूर्य अस्त होने को आ गया तो कहा। (दोहा)—

अनादि काल से जीव, शरीर का घट टूट गया तो
घर लौट कर कहाँ आते, मेरा घट आज टूटा।
अब मैं सांसारिक घर में, न लौट कर महासुख में जाती हूं,
अहो गुरु अद्भुत है, सुख इष्ट उसी पर आधृत है।

यह कह कर वे आकाश में ऊपर उड़ गईं। इक्कीस दिन तक 'आर्च' नगर के लोगों को उपदेश देकर अन्त में (उसी शरीर द्वारा) वे खेचर भूमि चली गईं।

गुरु मणिभद्रापा का वृत्तान्त समाप्त

६६. गुरु मेखलापा का वृत्तान्त

गुरु मेखलापा का वृत्तान्त इस प्रकार है—यह देवीकोट की रहने वाली थीं। देवीकोट (पूर्वी भारत) के एक नगर में एक गृहस्वामी को एक पुत्र और दो पुत्री थे एक नौ वाहक के दो पुत्र थे, उनके साथ उनका सम्बन्ध बना। उन दोनों लड़कियों ने कुछ भी अपकर्म नहीं किये, पर लोग उन दोनों की निंदा करने लगे। इस घटना से ऊब कर एक लड़की कहने लगी कि बिना कारण निंदा सुनते रहने की अपेक्षा अन्यत्र चला जाना ही अच्छा होगा। दूसरी लड़की कहने लगी कि नहीं, जहाँ भी जाय, अभागे लोगों को इससे कोई अन्तर नहीं आयेगा। इससे यहीं रहना अच्छा होगा।

उस समय गुरु कन्हपा वहाँ आ पहुँचे। वे सात सौ योगी और योगिनियों के परिवार के साथ थे। बिना स्पर्श किये छत्र उनके सिर के ऊपर घूम रहे थे। बिना बजाये डमरू आदि स्वतः शब्दायमान हो रहे थे। इस प्रकार वे अनेक (चमत्कारी) गुणों से सम्पन्न थे। दोनों लड़कियों ने आपस में (परामर्श किया कि) उन दोनों की नगर के लोग और स्वयं उनके पति भी कुछ निंदा करते रहते हैं। अतः वे भी उन गुरु से कुछ उपदेश दीक्षा लेकर साधना क्यों न करें।

यह सोच कर दोनों गुरु के पास गईं। वहाँ जाकर उन्होंने अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाया और दीक्षा की प्रार्थना की।

कन्हपा ने अनुमति दे दी और अभिषेक प्रदान करके दर्शन, भावना और चर्या के 'युगनद्ध फल' वज्रवाराही के रूप में दीक्षा प्रदान की। उन दोनों ने भी बड़े उद्यम के साथ उसकी साधना की। बारह वर्ष में सिद्धि प्राप्त हो गई। अपने गुरु के पास जाकर प्रणाम, अभिवादन, प्रदक्षिणा किये तथा कृतज्ञता ज्ञापित की।

गुरु ने कहा कि—मुझे पहचान में नहीं आया कि तुम दोनों कौन हो ? इस पर दोनों ने अपने पूर्व वृत्तान्त सुनाये।

योगी ने कहा—यदि ऐसी हो, तो मुझे दक्षिणा देनी होगी।

दोनों लड़की—गुरु जो चाहें, वही दक्षिणा होगी।

गुरु—तुम दोनों मुझे अपने सिर दो।

लड़कियाँ—यदि गुरुजी चाहते हैं तो अवश्य सिर देने को हम तैयार हैं। उन दोनों ने अपने-अपने मुख से ज्ञानरूपी तलवारें बड़ी तेज धारवाली निकालीं। परम अंग अपने सिर को काटकर उन गुरु के चरणों में अर्पित किया और (निम्न दोहा) कहा—

हम दोनों के गुरु की कृपा से ही—उत्पत्ति-सम्पन्न-युगनद्ध द्वारा
संसार निर्वाण का प्रपंच टूटा।
युगनद्ध दृष्टि एवं चर्या द्वारा हेयोपदेयता के प्रपंच का छेदन किया,
धर्मता एवं संवित्ति की युगलता द्वारा स्व पर के प्रपंच को हमने छोड़ा।

अप्रपंच संकेत के रूप में यह आपके लिये अर्पण करती हैं।

इस प्रकार सिर दक्षिणा के रूप में रखकर नृत्य किये, कन्हपा ने कहा—

अहो युगल महायोगिनियाँ–परम गुण की प्राप्ति अद्भुत है। केवल अपनी सुख-शान्ति (की चाह) बहुत तुच्छ है, जगतार्थ (उद्यम करते) रहना।

इस कथन के साथ ही उन दोनों के सिर पुनः पूर्ववत् हो गये। इस घटना से सब लोग आश्चर्य चकित हो गये। वे सर्वत्र 'छिन्नावन्धु' नाम से प्रसिद्ध हुईं।

वे कन्हपा की सेवा करतीं और महामुद्रा परमसिद्धि का लाभ कर अनेक वर्षों तक जगतार्थ करती हुई अवदान उक्तियां कहकर खेचर भूमि चली गईं।

गुरु मेखलीपा का वृत्तान्त समाप्त

६७. गुरु कनखला का वृत्तान्त

गुरु कनखला (कनखल) का वृत्तान्त इस प्रकार है—(कनखल का अर्थ 'कण' वाला प्रदेश है। यह सिद्ध कन्हपा अर्थात् कृष्णाचार्य द्वारा अनुगृहीत उपर्युक्त दो कन्या बन्धु जिनको सिरछिन्ना बन्धु कहा जाता है, ही हैं। उन दोनों मे से यह छोटी बहिन हैं। इनकी विमुक्ति का इतिवृत्ति ऊपर कहे विवरण से ज्ञात हो जाता है। इनका नाम सर्वत्र कनखली ही प्रसिद्ध है।

गुरु कनखला (पा) का वृत्तान्त समाप्त

६८. गुरु किलि-किलिपा का वृत्तान्त

गुरु किलि-किलिपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—किलि का अर्थ है, चिल्लाने वाले। ये 'मिरिलिङ्ग' नामक जगह के रहने वाले और जाति के शूद्र थे।

मिरिलिङ्ग नगर में शूद्र जाति के एक व्यक्ति अपने पूर्व कर्मवश बहुत जोर के चिल्लाने वाले हो गये। नगर के लोग इससे तंग हो गये और उनको नगर से बाहर कर छोड़ दिया। इससे वह बड़े दुःखी हो गये और एक श्मशान में जाकर बड़े कष्ट के साथ बैठे थे। वहाँ एक योगी आ पहुँचे। उन्होंने उस व्यक्ति से पूछा कि—तुम इस श्मशान में किसलिये बैठे हो ?

उस व्यक्ति ने अपने सभी पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया।

योगी ने कहा—तुमको इस तरह का बुरा न लगे, संसार के दुःखों से मुक्त होने के उपाय क्या तुम नहीं चाहोगे ?

व्यक्ति—यदि ऐसा हो, तो अवश्य चाहेंगे।

योगी ने उन्हें प्रणाम-पूजा आदि की व्यवस्था दी और उन्हें गुह्य समाज (मण्डल में) अभिषेक प्रदान किया। 'दृष्ट स्वतः विमुक्ति' की दीक्षा इस प्रकार दी—

दोहा

शब्द मात्र में स्व-पर सभी शब्द अभिन्न एक ही स्वभाव की भावना करो,
तत्पश्चात् स्वशब्द आकाश मध्य से, मेघ गर्जन एवं पुष्प वृष्टि की भावना करो।

उस (व्यक्ति) ने भी बड़े उद्यम के साथ (गुरु के वचनानुसार) भावना की। फलतः पर व्यक्ति के क्रोध आदि शब्द स्वतः खो गये। अपने शब्द भी पुष्पवृष्टि के रूप में समाप्त हो गये। पुष्प की कल्पना आकाश के रस में (आकाश धातु के रूप में) खो गई। समस्त दृष्ट-दर्शन महामुद्रा के रूप में प्रतीत होने लगे और दृष्ट स्वतः विमुक्त होकर परमसिद्धि का लाभ हुआ। सर्वत्र उनका नाम गुरु चिल्लाने वाले (किल किलापा) प्रसिद्ध हो गया।

उन्होंने बहुत से जगत् कल्याण करने के बाद अपने अवदान भी कहे। अन्त में तीन सौ शिष्य परिवार के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु किलि-किलिपा का वृत्तान्त समाप्त

६९. गुरु कन्तलिपा का वृत्तान्त

गुरु कन्तलिपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—'कन्तलि' का अर्थ है सिलाई करने वाला। मणिधर नामक नगर के एक शूद्र जाति के व्यक्ति धन-सम्पत्ति से अत्यन्त दरिद्र होकर दर्जी का काम करते हुए घूमते रहे। एक समय सिलाई की सुई उनके हाथ में चुभ गयी। बहुत सा खून गिरा और उसकी पीड़ा से बहुत पीड़ित हो गये। इससे असह्य होकर वे एक किनारे बैठे छटपटा रहे थे। उसी समय 'वैतली नामक डाकिनी एक स्त्री का रूप धारण करके उनके पास आई और उनसे पूछा कि—तुम क्या कर रहे हो ?

उस (दर्जी) ने—अपने सभी पूर्व वृत्तान्त कह दिए।

डाकिनी ने कहा—इससे भी अधिक दु:ख पूर्व जन्मों में भोग चुके हो, अब भी अगले जन्म में भी पुनः पुनः इससे कई अधिक दु:ख भोगना पड़ेगा। क्योंकि (तुम) स्वयं दु:ख के स्वभाव से अतीत नहीं हो।

उसने कहा—इन दु:खों से मुक्ति पाने का कोई उपाय आप हमें दें।

डाकिनी—उसकी तुम साधना कर सकोगे ?

उस व्यक्ति ने कहा—क्यों नहीं, अवश्य कर सकूँगा।

डाकिनी ने उन्हें-हेवज्र के (मण्डल) में अभिषेक दिया और अप्रमेय (योग) गुरुयोग, उत्पत्ति क्रम योग की दीक्षा दी। परन्तु उनकी (पूर्व संस्कार के कारण) कल्पना सिलाई की ओर ही जाती रही।

इसके बारे में गुरु से कहे, तो गुरु ने पुनः विकल्प मार्ग के रूप में उपयोग करने के हेतु उपदेश इस प्रकार दिया—(दोहा)

शून्यता आकाश में चिथड़े को, स्मृति संवर ज्ञान
सुई-सुतली द्वारा। वस्त्र सिलाते हुए करुणा की सुई,
समग्र त्रिभाविक जीव में व्याप्त भावना करो।

ऐसा कहने पर, उसने भी वैसी ही भावना की। फलतः समस्त धर्म की शून्यता का ज्ञान प्राप्त हो गया और इस तरह के ज्ञान से रहित जीव के प्रति उन्हें अपार करुणा उत्पन्न हुई। परिणाम स्वरूप (सर्वधर्म शून्यता एवं समग्र जीव करुणा) इन दोनों की युगल—स्थिति महामुद्रा परमसिद्धि की प्राप्ति हुई। सर्वत्र उनका नाम कन्तलिपा प्रसिद्ध हो गया। उन्होंने अनेक जगत् कल्याण के बाद अपने अवदान भी कहे और अन्त में उसी शरीर द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु कन्तलिपा का वृत्तान्त समाप्त

७०. गुरु धहुलिपा का वृत्तान्त

गुरु धहुलिपा (धगुलिपा, धहुरिपा ?) का वृत्तान्त इस प्रकार है—ये धोकर देश के रहने वाले और जाति के शूद्र थे।

धोकर देश के शूद्र जाति के एक व्यक्ति घास की रस्सी बनाकर जीविका के लिये बेचते थे। एक समय बहुत सी रस्सियाँ बनाने से उनके हाथ में बहुत उग्र छाले पड़ गये। उससे बहुत पीड़ा होने लगी। वे रोते हुए एक किनारे जा बैठे। एक योगी ने उनके पास आकर पूछा कि—तुम्हारा क्या खराब हो गया ?

उन्होंने अपना वृत्तान्त सच-सच बता दिया।

योगी ने कहा—तुम इस समय इतने मात्र दुःख से असह्य हो जाते हो ? परलोक में दुर्गतिमय योनि में पैदा हो, फिर कैसे क्या करोगे ?

उन्होंने कहा—हे गुरु हमें इस तरह के दुःख से मुक्ति पाने का उपाय दें।

योगी ने उन्हें प्रथमतः प्रभाव संक्रमण अभिषेक प्रदान किया, तत्पश्चात् विकल्प मार्ग के रूप में उपयोग करने की दीक्षा इस प्रकार दी—(दोहा)—

**दृष्ट संस्कार कुश और परिकल्पित आलोक (आकाश) में
स्थित दोनों,
आद्यतः असिद्ध स्वभाव में ही शक्ति के निरन्तरता की
भावना करो।**

ऐसा कहने पर, उन्होंने बड़े उद्यम के साथ बारह वर्ष तक साधना की। फलतः परिकल्पित की निराश्रयता, परतन्त्र का प्रतीत्य समुत्पन्नत्व और परिनिष्पन्न की धर्मता का अभिन्न स्वरूप साक्षात्कार ज्ञान प्राप्त हो गये। परमसिद्धि का लाभ कर सर्वत्र उनका नाम गुरु धगुलिपा (धहुलिपा) प्रसिद्ध हुआ। सात सौ वर्ष तक भारत के कोने-कोने में घूमते जगत कल्याण का कार्य सम्पादन कर अन्त में स्व अवदान कह कर पाँच सौ शिष्य परिवार के सहित खेचर भूमि चले गये।

गुरु धगुलिपा का वृत्तान्त समाप्त

७१ गुरु ओडिलिपा का वृत्तान्त

गुरु ओडलिपा (धलिपा ?) का वृत्तान्त इस प्रकार है—ओडलि का अर्थ 'उड़ने वाला' है। ये देवीकोट नगर के रहने वाले थे और जाति के वैश्य थे।

देवीकोट नामक नगर में वैश्य जाति के एक व्यक्ति पूर्वदान (पुण्य) के परिणाम स्वरूप धन सम्पत्ति से परिपूर्ण थे। अपने महल के अन्दर बैठे पाँच प्रकार के भोग्य सामग्री का भोग कर रहे थे।

एक समय आकाश में पाँच रंग के मेघ छाये हुए थे और मेघों में नाना प्रकार के जीव (पशु पक्षियों) के आकार दिखलाई पड़े रहे थे। वे उन्हें देखते रहे, तो उनकी दृष्टि के सामने से कुछ 'हंस' (पक्षी) उड़ते जा रहे थे। उनके मन में यह विचार आया कि—मैं भी इन (हंस पक्षी) की तरह उड़ सकूँ, तो कितना अच्छा हो। यह सोचते अन्य कोई काम उनको नहीं सूझता था।

उसी समय उनके यहाँ गुरु कर्णरिपा आ पहुँचे। उन्होंने भोजन के लिए भिक्षा माँगी।

उस व्यक्ति ने कहा कि—हे योगी! आप के लिये भोजन अवश्य दूँगा। यदि आपके पास आकाश में उड़ने का कोई उपाय हो, तो मुझे अवश्य ही प्रदान करें। यह कह कर उन्होंने योगी की सेवा में उत्तम कोटि के पेय आदि की व्यवस्था की और प्रणाम पूर्वक दक्षिणा आदि चढ़ाई। (फिर वही प्रार्थना की)।

कर्णरिपा ने—यह तो मेरे पास है, कहकर 'चतुर वज्रासन' (मण्डल में) उन्हें अभिषेक दिया और दीक्षा के रूप में निम्न बातें कहीं—

चौबीस महासिद्ध पीठों में जाकर (वहीं की पीठ अधिष्ठातृ) डाकिनी का जप दस-दस हजार करो। और वहीं से एक-एक ओषधि भी लेते आना। यह कहकर उसे भेज दिया।

उस व्यक्ति ने पूछा—यदि वे सब पूर्ण हो जायँ, तो क्या-क्या करना होगा? (योगी ने उत्तर दिया)—उन सबों को प्रथमतः तांबे के पात्र में डालो। उसके बाद चांदी के पात्र में और तत्पश्चात् सोने के पात्र में डाल दो। (उसके बाद तुम) आकाश में उड़कर जा सकोगे। तदनुसार साधना करने पर उन्होंने बारह वर्ष में (सब शर्तें पूर्ण कर लीं और) सभी ओषधि पूर्ण हो गये।

उसने गुरु के निर्देशानुसार ओषधियों को ताम्र आदि के पात्र में डाले, तो वे आकाश में उड़ सके। उनका नाम भी सर्वत्र गुरु ओडिलिपा प्रसिद्ध हो गया। अन्त में स्व अवदान कहकर इसी शरीर के द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु ओडिलिपा का वृत्तान्त समाप्त

७२. गुरु कपाल पा का वृत्तान्त

गुरु कपाल पा का वृत्तान्त इस प्रकार है—'कपाल पा' का अर्थ कपाल धारण करने वाला है। ये राजपुर जनपद के रहने वाले थे और जाति के ये शूद्र थे।

राजपुर नगर के एक शूद्र जाति के व्यक्ति मजदूरी से अपनी जीविका चला रहे थे। उनके पांच पुत्र थे। पूर्व कर्म वश एक दिन उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। उसकी लाश श्मशान में पहुँचाने गये (तो वह लाश छोड़ने में असमर्थ होकर) वहीं रोते रहे। क्रमशः उनके सभी पुत्र भी मर गये, लोगों ने उन्हें बुलाया, तो पुत्रों की लाश भी श्मशान में पहुँचाये और (सब लाश वहीं रखकर उनके पास वे) रोते रहे। फिर महायोगी कृष्णाचार्य वहीं आ पहुँचे। उन्होंने उस व्यक्ति से पूछा कि—तुम यहाँ क्या करते रह रहे हो ?

उसने उत्तर दिया—हे योगी ! मेरा अपने गृह स्वामिनी एवं सभी पुत्रों से सदा के लिये वियोग हो गया, शोक से संतप्त होकर यहीं बैठा हूँ। इन लाशों को त्यागने में असमर्थ होकर यहीं रह रहा हूँ।

आचार्य कृष्णाचार्य ने कहा—त्रिधातु के सभी प्राणी इस स्वभाव के ही हैं। यह तुम्हारे अकेले का नहीं है। इसके लिये शोक नहीं करना है। यदि किया भी जाय, तो इससे कोई लाभ नहीं होनेवाला है। अतः धर्म ग्रहण करो। तुम संसार के जन्म-मरण से नहीं डरते हो ?

उसने उत्तर दिया—जन्म-मरण से डर रहा हूँ, यदि इससे मुक्त होने के उपाय हों तो मुझे अवश्य प्रदान करें।

आचार्य ने उन्हें हेवज्र के (मण्डल में) अभिषेक प्रदान किया और उत्पत्ति और सम्पन्न क्रम की दीक्षा देकर चारिका में लगाया। (वह इस प्रकार है) पुत्र की हड्डियों से छः प्रकार के आभूषण बनवाये, और उसे पहनवाये। पत्नी के सिर कटवाकर (कपाल निकलवाये और उसी को) खाने का पात्र बनवाये। साथ ही कपाल को उत्पत्ति क्रम के रूप में, तथा कपाल के अन्दर जो खालीपन है, उसको 'सम्पन्न क्रम' के रूप में संकेतित किया।

वह (व्यक्ति) भी चारिका के साथ भावना करते रहे। नौ वर्ष में ही (दृष्ट दर्शन एवं चर्या) युगल की (अभिन्नता का) ज्ञान होकर उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई।

तत्पश्चात् उन्होंने अपने विनेय लोगों से कहा—(दोहा)

मैं तो योगी कापालिक हूँ, सभी धर्मों का स्वभाव में
कपाल के समान जानने से, (तत्) बलेन प्राप्त चर्या में
स्थित हूँ।

यह कहकर उन्होंने आकाश में बैठे नृत्य किया। लोगों में बड़ी श्रद्धा हुई। सर्वत्र उनका नाम गुरु कपालि पा प्रसिद्ध हो गया। पाँच सौ वर्षों तक जगत् का अर्थ साधने के बाद अपना अवदान भी उन्होंने कहा। अन्त में छः सौ शिष्य परिवार के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु कपालि पा का वृत्तान्त समाप्त

७३. गुरु कीरपल पा का वृत्तान्त

गुरु कीर पलपा (किरपालपा ?) का वृत्तान्त इस प्रकार है—किरपाल पा या किरपल का अर्थ है 'नाना मन्त्र'। ये जाति के क्षत्रिय थे और ग्रहर जनपद के रहने वाले थे।

'ग्रहर' नामक जनपद के एक क्षत्रिय राजा विस्तृत राज्य का उपभोग कर रहे थे और वे कुबेर की तरह धन-धान्य से सम्पन्न थे। परन्तु वे उससे तृप्त नहीं हो पाये। वह अन्यत्र स्थित राजाओं के राज्यों को भी छीन-छीन कर भोगा करते थे। इस मिलसिले में एक राज्य पर उन्होंने एक बार सैनिक आक्रमण किया। वहाँ स्थित सभी पुरुष जो भाग निकलने में समर्थ थे, सब भाग गये। स्त्री आदि जो भाग नहीं सकीं रोती, पीटत्ती, बेहोश हो गईं। ऐसे अनेक प्रकार के दृश्य उस राजा ने स्वयं देखे। इस सम्बन्ध में राजा ने अपने एक मन्त्री से पूछा। मन्त्री ने भी सभी वृत्तान्त सही-सही बतलाया। इस घटना से वह राजा बड़े दुःखी हुए और कहने लगे कि—यह तो बड़ी दयनीय स्थिति है। इन लोगों के पति, पिता आदि सबको बुलाओ अपने-अपने राज्य उन्हें सौंप दो। ऐसी आज्ञा देने पर मन्त्री ने भी वैसा ही किया। (राजा मन्त्री सब) पुनः अपनी जगह पर लौट गये और वहाँ दान के लिये बहुत बड़ी घण्टी बजाई। सब लोगों को अपरिमित दान करके वे सोचने लगे कि अब मुझे कुछ धर्म (विहित साधना) करनी चाहिये। उसी समय एक योगी उनके यहाँ आ पहुँचे और भोजन की याचना की। उस (राजा) ने उत्तम भोज्य प्रदान किया। उस (योगी) ने भी चार अप्रमाण आदि धर्म उपदेश दिया, तो राजा ने कहा—नहीं हमें इसी जन्म में ही बुद्धत्व प्राप्त हो, ऐसे धर्म दो। उन (योगी) ने उन्हें श्री चक्र सम्वर में अभिषेक दिया और उत्पत्ति क्रम एवं सम्पन्न क्रम की भावना करने के लिये कहा तो पूर्व संस्कार के वशीभूत होकर राज्य एवं युद्धादि के विकल्प से उनके सारे मार्ग अवरुद्ध हो गये।

(इस वृत्तान्त को गुरु से कहा) उन्होंने (गुरु ने) 'विकल्प स्वतः मुक्ति' की दीक्षा इस प्रकार दी—

दोहा—

त्रैधातुक, समग्र प्राणी, योद्धाओं से भरा देखो
समस्त आकाश धातु-स्वचित्त से सम्भूत अपार वीर, ये दोनों।
अभिन्न होकर सभी शत्रु का हाण करो स्वयं महाराजा हो,
विजय सुख पाकर, भवाग्र की भावना करो।

ऐसा कहने पर (उसने भी) तदनुसार बारह वर्षों तक भावना की और अन्त में दृष्टि (तत्त्व) का ज्ञान हो सिद्धि लाभ किया। सभी राजमहल प्रकाश से भर गये, तो रानी आदि (राजमहल के) लोगों को पता चल गया कि इनको सिद्धि प्राप्त हो

गई। रानी आदि ने उनकी पूजा की। उन्होंने कहा—(दोहा)—

चार अप्रमाण सत्व में, आसक्त काम भोग लें
महाद्वेष वीरों द्वारा समस्त शत्रुओं का हाण करो।

वह गुरु 'किरपल' नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये। उन्होंने अपने अवदान भी कहे और सात सौ वर्षों तक जगतार्थ साधन किए। अन्त में छः सौ शिष्य परिवार के साथ खेचर भूमि चले गये।

गुरु किरपल पा का वृत्तान्त समाप्त

७४. गुरु सागर पा का वृत्तान्त

गुरु सागर पा का वृत्तान्त इस प्रकार है--काँची नगर में इन्द्रभूति नामक एक राजा थे। वह चौदह लाख के नगरादि पर राज करने वाले राजा थे। पर उनकी कोई सन्तान नहीं थी। वे लौकिक एवं अलौकिक सभी देवी देवताओं से (सन्तान के लिए) प्रार्थना किया करते थे। एक समय उनकी रानी गर्भवती हो गई। चिन्तन भी कुछ कुशल की ओर होने लगा। छः मास के बाद (एक दिन) रानी को ऐसा स्वप्न दिखाई दिया कि उनके दोनों स्कन्धों से सूर्य चन्द्र उदित हो रहे हैं। समुद्र पी रही है, सुमेरु पर्वत खा रही है, त्रिधातु के लोक पैर के नीचे दबा रही है। इस स्वप्न वृत्तान्त को उन्होंने राजा से कह सुनाया। राजा ने कहा कि मैं क्या जानता हूँ। पुरोहित पण्डित एवं ब्राह्मणों से पूछूँगा। यह कहकर उन्होंने पुरोहितों एवं ब्राह्मणों से भोजन दक्षिणा आदि देकर पूछा। लोगों के परीक्षण करने पर देखा गया कि—

यह धर्म राज्य ग्रहण करने वाले एक बोधिसत्व राजा के होने के ही लक्षण थे। पर इनको लौकिक जन कुछ पसन्द नहीं करते इसलिए उन लोगों ने (पुरोहित आदि लोगों ने) (राजादि) प्रसन्न रखने के लिए कहा कि—यह सभी लौकिक सम्पदा के स्रोत आकर एक राजकुमार के जन्म के लक्षण हैं। इस कथन से राजा आदि सब लोग बड़े प्रसन्न हुए।

तत्पश्चात् नौ मास पूरे होकर दसवें में पुत्र जन्म का समय आ गया। कर्म एवं पुण्य के बल से सिद्ध एक झील के अन्दर बहुत बड़े कमल के बीच में आधी रात को एक पुत्र का जन्म हुआ। उस समय उस प्रदेश में इष्ट वस्तुओं की वृष्टि हुई। इस घटना से वहाँ के सब लोग आश्चर्य चकित हो गये। लोग सन्देह में पड़ गये कि यह किसकी शक्ति थी। आये दिन के बाद लोगों को पता चला कि उस नव-जात बालक की शक्ति थी। उनका नाम भी सरोज कुमार रखा गया। उस (बालक के पुण्य) बल पर वहाँ की जनता उत्तम काम गुणों का भोग भोग रही थी। फिर रानी से दूसरे और एक बालक का जन्म हुआ। इस प्रकार वे दो भाई हो गये।

जब राजा का स्वर्गवास हुआ, राज्य बड़े भाई को दिया गया। पर उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया और उसे छोटे भाई को सौंप कर वे भिक्षु बन गये। (और वे वहाँ से) श्रीधान (कोष) चले गये। जाते समय आर्य लोकेश्वर ने एक भिक्षु का रूप धारण किया। मार्ग में उनसे भेंट हुई (सरोज ने) उन (भिक्षु) को नहीं पहचाना। भिक्षु सागर से अपना वृत्तान्त पूछा। भिक्षु ने (अपना वृत्तान्त) सही बतला दिया।

उस (निर्मित भिक्षु) ने पूछा कि आप सम्भोग काय से मिलना चाहते हैं?
(सरोज) भिक्षु ने कहा—चाहता वही हूँ, पर मेरे पास कोई उपाय नहीं है।
उस (निर्मित्त) भिक्षु ने कहा—तुम मुझे गुरु के रूप में मानो। और वह नम्रता

श्रद्धा से चाहे, तो हो सकता है। उस (भिक्षु) ने वहीं प्रणाम अभिवादन आदि पूर्व प्रार्थना की। (निर्मित भिक्षु) ने हेवज्र के मण्डल का साक्षात् दिखलाकर अभिषेक प्रदान किया और दीक्षा दी। आर्य (लोकेश्वर के निर्मित भिक्षु) वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। वह (सरोज) भिक्षु 'श्रीधान' चले गये। वहाँ वे साधना करते रहे। उस समय वहाँ एक दिन योगी जैसा एक आदमी आया और 'सरोज' से पूछा कि आप यहाँ क्या कर रहे हैं? सरोज ने अपना वृत्तान्त बतला दिया। उस आदमी ने पुनः कहा कि—यदि ऐसा है तो आपके सभी लाभ-सत्कार सेवा मैं कर दूंगा, परन्तु सिद्धि प्राप्ति के बाद हमें दीक्षा देनी होगी। सरोज ने उसे स्वीकार किया और वे एक खाली गुफा में बैठे।

उस आदमी की सेवा के साथ बारह वर्षों तक वे (सरोज) उसी गुफा में साधना करते रहे। उस अवधि में वहाँ के प्रदेशों में बड़े अकाल पड़े। बहुत लोग मरे। उस आदमी ने यह सोचकर कि यदि यह वृत्तान्त गुरु से सुनाये, तो उन्हें विघ्न पड़ेगा, इस वृत्तान्त को छिपा कर वह उनकी सेवा करता रहा। वह स्वयं गुरु के खाए हुए बासी थोड़ा खाकर जीवन चलाता रहा। एक दिन उसे कहीं से भी खाना नहीं मिल पाया। वह एक राजा के महल में चले गए। वहाँ उनको भिक्षा-पात्र भर भात मिला। उसी को लेकर वह बिना खाये-पीये-गुरु की गुफा में पहुँचे। वह (कमजोरी की वजह से वात रोग (से ग्रस्त) होकर वहीं गिर पड़े। भात भूमि पर बिखर गया। (उसे देखकर गुरु ने कहा कि) यह कोई मदिरा तो तुमने नहीं पी ली?

उसने उत्तर दिया—मदिरा कहाँ से मिलती, भूख से कमजोर होकर गिर रहा हूँ।

गुरु—भोजन क्यों नहीं मिलता?

सेवक—गुरुजी को (साधना में) विघ्न होने के डर से नहीं कह सका। यहाँ बारह वर्ष तक बड़ा (दुर्भिक्ष) पड़ा । बहुत से प्राणी मर भी गये और बहुत से लोग अब भी (भूख से) दुःखी और पीड़ित हैं।

आचार्य सरोज—ऐसा था तो उस समय तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा। ऐसा कोई नियम है? जब कि अकाल रोकने का उपाय मेरे पास था। अब उठो। यह कहकर भूमि पर बिखरे हुए भात सब उठाया और उन्होंने एक (नदी) पानी के पास (तट) पर जाकर उस भात को बलि (के रूप में) चढ़ाये। आठ नाग राजाओं को मन्त्र, मुद्रा और समाधि के द्वारा प्रभावित किया। वे लोग (नाग लोग) बड़े भयभीत होकर मस्तिष्क निकल जाने के डर से (आचार्य के) यहाँ आकर कहने लगे कि—क्या काम करना है?

(आचार्य ने) आज्ञा दी कि—जम्बूद्वीप में अवर्षण के कारण बहुत से प्राणी मर गये, यह तुम लोगों का अपराध है। अब तुम लोग (यहाँ के जीवित लोगों के लिए) प्रथम दिन खाद्य (वस्तुओं) की वर्षा कराओ। उसी प्रकार दूसरे दिन अन्न

की वर्षा और तीसरे दिन वस्त्र शयन (बिस्तर) आदि की वर्षा कराओ। उसके बाद तीन दिन तक रत्न (आदि) की वर्षा कराना होगा। यह सब हो जाने के बाद जल-वृष्टि कराओ।

नाग लोगों ने भी आज्ञा का पालन किया। सभी (तत्कालीन दुःखी) प्राणी दुःख से मुक्त हो गये। इस घटना का सुयश चारों ओर फैल गया। यह आचार्य सरोज की शक्ति है, सब लोगों के चर्चा का विषय हो गया। सब लोक में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई।

उसके बाद (आचार्य ने) उनके सेवक, जिसका नाम राम था और बारह वर्षों तक जिसने उनकी सेवा की थी, को हेवज्र के (मण्डल में) अभिषेक प्रदान किया और हेवज्र की उत्पत्ति और सम्पन्न क्रम की दीक्षा दी। (तत्काल उन्हें) लौकिक सिद्धि प्राप्त हुई। उसके बाद दीक्षा देकर उसको यह आज्ञा दी कि—बिना जगत् कल्याणार्थ तुम खेचर भूमि मत जाओ। अब तुम (दक्षिण) श्री पर्वत जाकर इस प्रकार (उक्त दीक्षा के अनुसार) साधना करो। तुम्हें (परम) सिद्धि का लाभ हो जायगा। यह कहकर गुरु खेचर भूमि चले गये।

'राम' ने भी श्री पर्वत जाकर तत्समीप एक राजकुमारी को वश में किया। दोनों ने वहाँ (साधना करते हुए) विहार आदि बनवाये और अन्त में ये दोनों भी खेचर भूमि चले गये।

गुरु सागर का वृत्तान्त समाप्त

७९. गुरु सर्वभक्ष का वृत्तान्त

गुरु सर्वभक्ष का वृत्तान्त इस प्रकार है—सर्वभक्ष का अर्थ सब कुछ खाने वाला है। ये 'अभीर' नामक नगर के रहने वाले थे और जाति के ये शूद्र थे।

अभीर नामक नगर में महाराज हरिश्चन्द्र का राज्य था। एक शूद्र जाति के व्यक्ति का पेट बहुत बड़ा होने के कारण वह सब कुछ खाता रहता था। एक समय उसे खाने के लिए कुछ नहीं मिल पाया। एक ओर जाकर खाने की कल्पना में मग्न होकर बैठा। सहसा श्री सरहपा वहाँ आ पहुँचे और उससे पूछ पड़े—तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?

उस आदमी ने उत्तर दिया—हे योगी ! मैंने तो पाचन-अग्नि के अत्यन्त प्रबल होने के कारण जो भी खाया, उससे पेट भरा नहीं। विशेष रूप से आज मुझे खाने के लिए कुछ न मिलने के कारण यहाँ दुःखी होकर बैठा हूँ।

योगी ने कहा—तुम मात्र आज की क्षुधा नहीं सह सकते हो, तो तुम जब प्रेत योनि में उत्पन्न हो जाओगे तो कैसे क्या करोगे ?

उस व्यक्ति ने पूछा कि--वैसी प्रेत योनि कहाँ होती है ?

योगी—यहीं देख लो, कहकर उनको एक (भयंकर) प्रेत दिखला दिया।

(वह बहुत डर गया और कहने लगा कि) इस तरह की योनि में पैदा होने का हेतु क्या है ? (योगी ने) सब कारण बतलाया।

फिर उसने प्रार्थना की कि--हे गुरुजी, इस तरह (के दुःख) से मुक्त होने का उपाय मुझे दें।

(उसकी प्रार्थना पर) सरहप्पा ने उसे सर्वप्रथम अभिषेक दिया।

उसके बाद उन्हें भुसुकु वृत्ति इस प्रकार दिया—

(दोहा)—

पेट खा ले आकाश में, पाचन अग्नि जलते धुमकेतु
दृश्य-जगत खाद्य-पेय ये, खाते सब कुछ खाने की भावना करो।

उसने भी तदनुसार भावना की, तो सूर्यचन्द्र भी भयभीत होकर सुमेरु के मध्य में जा छिपे। फलतः लोग एक साथ चिल्लाये कि अहो, आलोक (सर्वदा के लिये) अस्त हो गया। परिणामस्वरूप डाकिनियों ने ब्राह्मणोत्तम (सरहपा) से जाकर शिकायत की, तो उन्होंने आकर उस (सर्वभक्षक) से कहा कि—'अब तुम सब कुछ खा चुके। अतः अब इन सबके अभाव की भावना करो।'

उसने भी वैसा ही किया। प्रतीति और शून्य की युगल स्थिति का उन्हें ज्ञान हो गया। परमसिद्धि का लाभ हुआ और सूर्यचन्द्र भी निकल आये जिससे सब लोग प्रसन्न हो गये। पन्द्रह वर्ष की अवधि में उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई और उन्होंने स्व-अवदान भी कहे। उसके बाद छः सौ वर्षों तक जगतार्थ साधन के बाद अन्त में हजारों शिष्य परिवार के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु सर्वभक्षपा का वृत्तान्त समाप्त

७६. गुरु नागबोधि का[1] वृत्तान्त

गुरु नागबोधि का वृत्तान्त इस प्रकार है—ये पश्चिमी भारत के रहने वाले थे, और जाति के ब्राह्मण[2] थे।

आचार्य नागार्जुन एक समय सुवर्ण विहार में रहे थे[3]। पश्चिमी भारत से एक ब्राह्मण चोरी करता हुआ क्रमशः वहीं (सुवर्ण विहार) पहुंचा। उस विहार के द्वार से देखा, तो अन्दर आचार्य नागार्जुन सुवर्ण पात्र में उत्तम भोजन कर रहे थे। उसने सोचा कि उस पात्र को चुराना चाहिये। आचार्य उसकी चोरी करने की इच्छा जान गये। आचार्य ने उस पात्र को वहीं फेंक दिया (जहाँ वे थे) (इस घटना से उस चोर को बड़ा विचित्र लगा) सोचा कि—ये ऐसा क्यों करते हैं। उसने आचार्य के (कमरे के) अन्दर प्रवेश किया और कहा कि—मैं इस सोने के पात्र को चुराने के लिये सोच रहा था, पर चुराने से पहले आपने इसको मेरे पास क्यों फेंक दिया ?

गुरु ने कहा—मैं तो आर्य नागार्जुन नामक व्यक्ति हूँ। मेरे पास जो धन है, वह सब परार्थ के लिये है। तुमको यह सब चुराने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी यह सब खाने पीने की चीजों को खा पीकर यहीं बैठो। जाते समय जो धन चाहो देकर भेजूँगा। गुरु के इस कृत्य से उनको बड़ी श्रद्धा आ गयी। धर्मोपदेश के लिये आचार्य से उन्होंने प्रार्थना की[4]।

आचार्य ने उसे गुह्य समाज (के मण्डल में प्रवेश करा) के अभिषेक प्रदान किया एवं अभिनिवेश स्वतः विमुक्ति की दीक्षा इस प्रकार दी—(दोहा)—

सभी कार्यों को बुद्धि से त्याग दो, मूर्धा में परिकल्पित परम सिंग,
मागत रत्नमय में, स्पष्ट प्रकाशमय की भावना करो।

यह कह कर उसके निवास के चारों ओर रत्नों से भर दिया। उसी के बीच उसको बैठाया। वे बहुत प्रसन्न हो गये और (आचार्य के कथनानुसार)

---

१ इनके दो नाम हैं—नागबोधि, नागबुद्धि। (तारानाथ—भ०ई०, पृ० ८५, अध्याय ७)

२ सास्या सम्प्रदाय की कुछ परम्पराओं में इन्हें पशु चराने वाली जाति का कहा गया है। दोङ्, थोग सास्या छो जुङ्०—पृ० २३, दिल्ली संस्करण।

३ सुवर्ण विहार से तात्पर्य एक जगह वे सोना बनाने के कार्य में लगे थे, उस स्थान से है।

४ इस घटना को दूसरी जगह और ढंग से तथा नागबोधि को जहाँ पश्चिम भारत कहा गया है, तारानाथ के अनुसार ये पूर्व भारत के और जाति के ब्राह्मण वृद्ध दम्पति के संतान थे। तीनों आचार्य नागार्जुन के शिष्य बने। बाद में लड़के को आचार्य सेवक के रूप में दे दिया गया। वह भिक्षु बने। प्रथमतः उन्हें रसायन सिद्धि का लाभ हुआ। परमसिद्धि का लाभ उन्हें आचार्य नागार्जुन के देहान्त के बाद बारह वर्ष तक साधना करने पर हुआ। (ता० इ० पृ० ८४)।

उपदेशार्थ की भावना करते रहे। बारह वर्ष होते उनके सिर में (जो भावना के आलम्बन के रूप) सींग थी, वह बहुत बड़ी होकर प्रत्यक्षतः हिलने डोलने लगी और उसे (गुफा के ऊपरी प्रदेश से) टकरा जाने से उसको दुःख (की वेदना भी) आने लगी[1]।

एक दिन आचार्य ने वहाँ जाकर उससे योगक्षेम पूछा, तो उसने (सींग के कारण) अपने कष्ट के बारे में कुछ कहा। (आचार्य ने उसकी भावना करने की क्षमता को) जान कर पुनः कहा (दोहा)—

परिकल्पित (रूप से) अभ्यस्त महा सिंग से जैसे सभी सुख का ज्ञान हो गया है,
वैसे ही वस्तु रूपेन अभिनिवेश से, समस्त जीव दुःखी होता है।
सभी धर्म तत्त्वत नहीं सिद्ध हैं, जैसे आकाश में मेघाच्छादित होता है,
उत्पत्ति-स्थिति निरुद्ध तीनों, किस मे किसका बाधोपकार होगा।
वैसे ही चित्त के शुद्धत्व में, किसका-क्या उपकार है और बाधा,
आद्यतः असिद्ध है ग्राह्य ग्राहक स्व-स्वभाव से ये शून्य हैं।

यह कहने पर, उनको (चोर को) शून्य धर्मतार्थ का साक्षात् ज्ञान हो गया और उसी में छः माह तक समाहित होकर बैठे, तो संसार-निर्वाण के अभिन्नता का साक्षात्कार होकर सिद्धि मिली। उनका नाम भी नागबोधि प्रसिद्ध हो गया।

(बाद में) आचार्य के शासन कुल के प्रतिनिधि के रूप में उन्हें नियुक्त किया गया और उन्हें आचार्य ने यह आदेश दिया कि जीव मात्र के लिए आठ (लौकिक) सिद्धियों में से (जिसको जो चाहे) देते इस श्री पर्वत में ही रहो। अष्ट सिद्धि-भूमि गमन, तलवार, निगमन हित साधन (निग्रह अनुग्रह) लघुता, चक्षु ओषध (काजल) निधि, शीघ्र गमन, रसायन ये आठ हैं।

'इस प्रकार से मैत्रेय बुद्ध के शासन आने तक तुम श्री पर्वत में जगत् कल्याणार्थ रहो' यह कर वहीं रख दिया है। बीस हजार वर्ष तक वहीं रहने की बात कही जाती है।

गुरु नागबोधि का वृत्तान्त समाप्त

---

१ नागबोधि के सिर पर सींग होने का वृत्तान्त अन्यत्र भी मिलता है, पर लामा तारानाथ के अनुसार यह सींग वाला वृत्तान्त नागबोधि से सम्बन्धित नहीं है। इससे सम्बन्ध सिद्ध (श्रृङ्गीपा) से है, जो आ० नागार्जुन के 'उशिर' (उशोनर) में रहते समय उनके शिष्य बने थे। (लामा ता० इ० पृ० ८५, अध्याय ७, सारनाथ संस्करण)।

७७. गुरु दारिक[1] पा का वृत्तान्त

गुरु दारिक पा का वृत्तान्त इस प्रकार है—ये सालिपुत्र[2] नामक नगर के रहने वाले थे और जाति के क्षत्रिय थे।

सारिपुत्र नामक जनपद में इन्द्रपाल[3] नामक एक राजा शिकार खेलने गये, और दिन में लौट कर सभा[4] में आये, तो सभी लोगों ने उनको प्रणाम किया। उस जन समुदाय के बीच में उन्होंने लूहिपा को देखा। राजा ने उनसे कहा—

आप इस प्रकार के सुन्दर चेहरे, मनोहर व्यक्ति इस तरह से गन्दी मछली की आँत मत खाएँ। आपको कौन-सा खाना चाहिए, सब कुछ मैं दूँगा। और दूसरा क्या चाहेंगे ? सब देय होगा। यदि राज्य चाहते हों, तो वह भी मिलेगा।

लूहिपा ने कहा—अगर अमर होने का कोई उपाय हो, तो वह सब मुझे चाहिए।

राजा ने कहा—मेरा राज्य और राजकुमारी ले लो।

लूहिपा—ये सब मुझे नहीं चाहिये।

राजा—क्यों नहीं चाहेंगे ?

लूहिपा—राज्य बहुत ही अल्प हित एवं बहुत अधिक दोषों से भरा होता है। इसलिए मैंने भी इसको त्याग दिया है।

इस कथन से राजा इन्द्रपाल को भी राज्य के प्रति कुछ घृणा आ गयी।उनके एक ब्राह्मण जाति के मन्त्री थे, उनसे उन्होंने कहा कि—मैं भी इस लोक में जैसा भी करें बीत जाता है खाना और कपड़ा (वस्त्र) किसी तरह से भी (हर जगह) आधा (से भी अधिक) पूरे नहीं हो पाते हैं। (इसकी अपेक्षा में) धर्म की ओर जाऊँगा। अत: राज्य पुत्र को सौंप देना अच्छा नहीं होगा ?

मन्त्री—यह, तो उचित ही होगा।

राजकुमार को राजगद्दी पर बैठा कर राज्याभिषेक किया और राज-काज

---

१ दारिका शब्द का अर्थ भोटदेशीय मूल पाण्डुलिपि में 'पत्नी वाला' लिखा है—(डुब थब्स् कुत् तु–पृ० ६१, बी० एन० १४, साक्य ग्रन्थावली) पर इसकी व्याख्याओं एवं वृत्तान्तों में 'दारिका' शब्द वैश्यवृत्ति स्त्री के लिए ही बुरे भाव में प्रयुक्त है। 'दारिकापा का अर्थ 'वैश्यवाला' ही ही होगा न कि पत्नीवाला।

२ कुनस्येन पद्कर के अनुसार इस नगर का नाम कुमार (कुमारी) क्षेत्र था और यह ओडि-विषय (औडिविषयम्) में था। (पदकर० ई० पृ० ७५, बी० एन० १५०) हो सकता है, दोनों नाम एक ही जगह के थे।

३ पदकर के बौद्धशासन इतिहास में इस राजा का नाम विमलचन्द्र लिखा है। (पृ० ७५)

४ यह वही सभा थी जिसका उपक्रम वार्षिक कुमुद पुष्प उत्सव के रूप में आयोजित किया जाता है—पद० पृ० ७५-७६। पद० के अनुसार लुईपा एवं राजा की भेंट दूसरी प्रकार से हुई। (वही)

उन्हें सौंपकर राजा और उनके वह मन्त्री दोनों लूहिपा[1] के पास श्मशान चले गये। श्मशान में जाकर उन दोनों ने लूहिपा की कुटी के दरवाजा खटखटाये। आचार्य ने अन्दर से पूछा कि कौन हो ?

उन दोनों ने कहा—हम लोग राजा (इन्द्रपाल और उनके) मन्त्री हैं। 'अन्दर आओ' कह कर (उन दोनों को दरवाजा खोलकर) अन्दर बुलाए। दोनों को चक्रसंवर के मण्डल में प्रवेश करा कर) अभिषेक प्रदान किया। उन दोनों ने दक्षिणा के रूप में खुद को आचार्य के लिये अर्पित कर दिया। उसके बाद तीनों आचार्य अन्य देश औदेश (उड़ीसा ?) चले गये। वहाँ तीनों भिक्षाटन से (जीविका चलाते) रहे। उसके बाद वे तीनों भीरपुर नामक देश चले गये। वहाँ जन्तिपु (सम्भवतः जयन्तिपुर या जौनपुर) नगर जो तीन लाख घराने का नगर था, में पहुँचे। वहाँ एक देवालय की पूजा करने वाली सात सौ नर्तकियाँ रहती थीं। उन लोगों की प्रधान नटी के पास गये, तो उनकी द्वारपाल के रूप में तीन सौ (लड़कियाँ) तैनात थीं। उन लोगों से कहा—तुम्हारी स्वामिनी कोई आदमी तो नहीं खरीदेगी ? उन लोगों ने अन्दर जाकर स्वामिनी से उस वृत्तान्त को सुनायी।

मालकिन ने कहा—हाँ खरीद लूँगी, पर देखने आती हूँ, कह कर दरवाजे में आकर देखा, तो एक सुन्दर मनोहर लड़का उनके सामने मौजूद था। उसने पूछा कि—

दाम क्या लोगे ?

(आचार्य ने कहा) एक सौ तोला सोना चाहिये।

राजा को वहीं (सौ तोला सोने में) बेच दिया। (आचार्य ने) शर्त यह रखी कि इन्हें रात को किसी के साथ मत सोने दो, और अकेला ही रखो। जब इनका दाम पूरा हो जाये, तो वापस लौटा कर भेजो। यह कह कर आचार्य और ब्राह्मण के पुत्र, जो मन्त्री थे, वहाँ से चले गये। राजा (इन्द्रपाल) दारिका के पास बारह वर्ष तक पैर धोना, तेल मालिश करना, लेप लगाना आदि सेवा करते रहे। गुरु की दीक्षा को स्मरण में रखते हुए सभी[2] प्रकार के कामों

---

१ पदकर के वृत्तान्त के अनुसार लुहिपा ने अभिषेक एवं दीक्षा वहीं दी जहाँ उन्हें सम्मान-पूर्वक राजमहल में बैठाया गया।

२ गुरु की दीक्षा स्मरण में रखने से तात्पर्य—जब ये राजा थे और अपने मन्त्री सहित लूहिपा से दीक्षा ली, उस समय (उपदेश देते समय) आचार्य ने दोनों से प्रश्न किया कि इस समय तुम्हारे में सबसे अधिक स्पष्ट प्रतीति किस विषय की है ? राजा ने उत्तर दिया—दारिका का। आचार्य ने 'दारिका' को ही उपमा बनाकर उपदेश दिये थे और तदनुसार उन्हें (राजा को) संसार के प्रति संवेग एवं यथा (महामुद्रा) का अवबोध हुआ था। उस अवबोध को स्मरण में रखते हुए नारी के शरीर को छूता था—
पद् ई० पृ० ७५–७८।

से पहले (सबके) मालिश[1] का काम करने दिया, तो श्रमजीवी सभी नौकरानियों के प्रिय बन गये। उस समय एक दिन उस दारिका के पास वे हार्दिक महा-राजा जनपा या उसे 'कुंचि' भी कहते हैं, नाम के एक अन्य राजा पाँच सौ तोला सोना लेकर आये। वह लोक धर्म के भोगी थे (स्त्रीभोगी) आचार्य (राजा इन्द्रपाल) ने बीच (के संयोजक, अर्थात् उन दोनों को मिलाने वाले) का काम किया। वह राजा (कुंचि प्रतिदिन) सात तोला सोना दिया करते रहे। कुछ दिन बाद कुंचि की पाचन अग्नि कम हो जाने से भारी भोजन के कारण पेट में दर्द होने लगा (दस्त होने लगे) जब एक दिन आधी रात के समय वह बाहर गए, तो उनके उद्यान के अन्दर से बहुत सुगन्ध आने लगा और कुछ वहाँ से प्रकाश निकल रहा था। वह उसने देख लिया। उसने वहाँ जाकर देखा, तो वहाँ वही नौकर, जो दिन में दारिका के यहाँ काम करते थे, वहाँ पन्द्रह देव कन्याओं से परिवृत्त होकर उन लोगों द्वारा उसका लाभ सत्कार हो रहा था। वे स्वयं गद्दी पर विराज-मान थे।

इस घटना से कुंचि आश्चर्यचकित होकर दौड़ घर लौट आये, इस वृत्तान्त को उस दारिका से कह सुनाया। दोनों वहाँ देखने गये, तो दोनों ने पूर्ववत् देखा (वैश्य प्रधान, जिसके पास वे थे) तब उस वैश्य को बड़ी ग्लानि और पश्चात्ताप हुए उसने प्रदक्षिणापूर्वक उन (राजा, जो आज तक उनके नौकर थे) के चरणों में गिर कर प्रणाम किया। और उनसे कहा कि हम (अज्ञान) जीव हैं। भ्रान्तिवश आपको (इस तरह के) गुणों से युक्त नहीं समझ पाए; इससे हमें बहुत से पाप लगे हैं। (मेरे इस अपराध को) आप क्षमा करें। प्रार्थना करती हूँ कि—बारह वर्ष तक मैं आपकी सेवा करना चाहती हूँ। मेरा पूज्य स्थानत्व आप स्वीकार करें। आचार्य (इन्द्रपाल राजा) ने इसे स्वीकार नहीं किया।

उस दारिका एवं 'कुंचि' ने पुनः प्रार्थना की कि हमें भी अनु-गृहीत करें।

आचार्य आकाश में ऊपर उड़कर वहीं बैठे—'शून्य नगरावतरण' नामक उपदेश इस प्रकार दिया—

साधारण राजा के ध्वज हाथी सहस्रों से
मेरा राज्य अत्युत्तम है, मोक्ष-ध्वज महायान वाहण।
त्रिभव आसन गद्दी में, दारिका पा उपभोग कर रहे हैं।

यह उनका अवदान उपदेश था।

---

१ मालिश का काम उनको इसलिये दिया गया है कि—इस नारी के शरीर का सर्वांगीण जानकारी पा सके।

'दारिका' के दास के रूप में रहने के कारण उनका नाम भी 'दारिक पा' सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया। अन्त में सात सौ शिष्य परिवार के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु दारिक पा का वृत्तान्त समाप्त

७८. गुरु पुतली पा का वृत्तान्त

गुरु पुतली पा का वृत्तान्त इस प्रकार है—'पुतली' का अर्थ चित्रवाला है। ये बंगाल के रहने वाले थे। जाति के ये शूद्र थे।

बंगाल जनपद के एक शूद्र जाति के व्यक्ति सवर्ण कुल से विवाह करके दिन बिता रहे थे। उस समय एक दिन एक योगी उनके यहाँ आये। भिक्षा माँगे, उसने भी खाद्य-खाद्य पेय आदि उत्तम भोजन से उनको तृप्त किया। उनके प्रति बड़ी श्रद्धा हो गयी, तो उन्होंने योगी से धर्म-उपदेश के लिये प्रार्थना की। (गुरु ने भी उसे स्वीकार किया और) उसको हेवज्र (के मण्डल में प्रवेश करा कर) अभिषेक प्रदान किया और दीक्षा दी। उन्हें हेवज्र का एक थङ्का (पटचित्र) देकर यह आदेश दिया कि—इस थङ्का को उठाते हुए नगर एवं ग्राम सब जगह भिक्षाटन करते साधना करो।

उस व्यक्ति ने भी वैसा ही किया। निरंतर बारह वर्ष तक की साधना से उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई। पर इसकी जानकारी किसी को नहीं थी। एक दिन वे राज महल में भिक्षाटन के लिये पहुँचे। राजा ने उनके थङ्का को देखा, तो उसमें उनका देवता (उस योगी के अपने देवता के) आसन के रूप में लिखा हुआ दिखाई दिया। राजा बिगड़ गये और योगी को मारने को तैयार हो गये। योगी ने कहा—यह मैंने नहीं लिखा है, यह तो चित्रकार ने लिखा है। यदि इसके लिये कोई दण्ड देना हो, तो मेरे देवता आप ही के देवता के आसन के रूप में लिख लीजिए। यह बात राजा को उचित ही लगी। राजा के देवता के आसन के रूप (हेवज्र को रखकर लिखवाया)। योगी ने उससे पूछा कि मेरे देवता को आसन के रूप में रख कर राजा का देवता क्यों लिखा ? चित्रकार ने प्रत्युत्तर में पूछा कि इससे क्या होगा ? योगी ने कहा—मेरे देवता देवताओं के भी देवता हैं। चित्रकार ने कहा इसका क्या प्रमाण है ? योगी—राजा के देवता को ऊपर लिख भी लिया जाय, तो भी दूसरे दिन वह आसन के रूप में नीचे ही आ बैठेगा।

राजा ने कहा यदि ऐसा है, तो मैं भी तुम्हारे शासन में रहूँगा। यह शर्त लगा कर चित्र को रात में वैसा रखा गया। योगी भावना करते रहे। सुबह देखा, तो राजा का देवता पुनः योगी के देवता के आसन के रूप में नीचे दबे हुए हैं। इस घटना से राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। और उन्होंने योगी के शासन में प्रवेश लेकर उस योगी को अपना गुरु बनाया। राजा के साथ उनके राज्य के और सभी लोगों ने उस धर्म में प्रवेश ले लिया। सब लोगों में उस योगी का नाम गुरु पुतलीपा (अर्थात् गुरु पट चित्र लेकर घूमने वाला) प्रसिद्ध हो गया।

पाँच सौ वर्षों तक जगतार्थ साधन करने के बाद अपने अवदान भी कहे और अन्त में छः सौ शिष्य परिवार के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु पुतली पा का वृत्तान्त समाप्त

७९. गुरु पनहपा का वृत्तान्त

गुरु पनहपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—'पनहपा' का अर्थ है जूतावाले अर्थात् उपानह वाले। यह 'पनह' शब्द उपानह का अपभ्रंश है। ये सेन्धो नगर के रहने वाले जाति के शूद्र थे।

सेन्धो नगर के एक व्यक्ति (विशेष जूता पहन कर आये। एक दिन उसने गुरु शक्तिमान नामक योगी को भिक्षाटन करके क्रमशः विहार में (निर्जन स्थान वन ?) जाते देखा। इसे देख कर उस (पनह) को बहुत श्रद्धा हो गयी। और वह उस योगी के पास जा पहुँचा।

योगी ने पूछा कि—तुम यहाँ क्यों आये हो ?

पनह ने उत्तर दिया—धर्मोपदेश के लिए प्रार्थना करने आया हूँ।

योगी ने—उसे संसार के दोष और मोक्ष की अनुशंसा का उपदेश दिया।

इससे उसके (पनह के) मन में संसार के प्रति घृणा पैदा हो गयी। उसने कहा—गुरुजी ? मुझे संसार से मुक्ति पाने वाले धर्म का उपदेश दें।

योगी ने उसे प्रभाव संक्रमण अधिष्ठान संक्रमण) अभिषेक प्रदान किया और अभिनिवेश मार्ग के रूप में उपयोग की जाने वाली दीक्षा इस प्रकार दी—(दोहा)

साभूषण उपानह पहन कर जनादि,
जहाँ चलते मधुर ध्वनि आते हैं, वही।
शब्द मात्र भी वहीं संगृहीत होने से,
उसे भी शून्यध्वनित की भावना करें।

ऐसा कहने पर उसने (पनह ने) इसका अर्थ अवबोध कर लिया। तदनुसार उन्होंने भावना की। नौ वर्ष में ही उनके दर्शन प्रहणीय मल विशुद्ध हो गये। और सिद्धि प्राप्त हो गई। उनका नाम गुरु पनहपा सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया। अपने अवदान भी कहे। आठ सौ वर्षों तक जगतार्थ साधन के बाद अन्त में आठ सौ शिष्य परिवार के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु पनहपा का वृत्तान्त समाप्त

८०. गुरु कोकिल पा का वृत्तान्त

गुरु कोकिल पा का वृत्तान्त इस प्रकार है—कोकिल का अर्थ है कोयल की वाणी वाले। ये जाति के क्षत्रिय थे और चम्पार्णव (सम्भवतः चम्पारण) के रहने वाले थे।

चम्पारण नगर में एक राजा रहता था। ग्रीष्म के दिनों में राजधानी में बहुत जोर की गर्मी पड़ी, उससे असह्य होकर उनकी रहने की व्यवस्था राज-उद्यान आम्रवन में की गयी। वहाँ के आम्र वृक्ष की छाया, शीतल पानी, विभिन्न पुष्प-फल आदि के मधुर सुगंध, सुन्दर दृश्य से राजा बहुत प्रसन्न होकर वहीं पर रेशम के बिछौने एवं तकिया में विराजमान थे। राजकुमार आदि द्वारा उनके लाभ सत्कार हो रहे थे। अनेक कुमारियों द्वारा—सेवा जैसे किसी के द्वारा मालिश हो रही थी, किसी के द्वारा पंखा चल रहा था, किसी के द्वारा संगीत, किसी के द्वारा नृत्य, किसी के द्वारा पुष्पवर्षण आदि हो रहा था। इस प्रकार वे पूर्ण रूप से राजसुख भोग रहे थे। और अनुष्य का (दुर्लभ) जीवन बेकार ही समाप्त हो रहा था। उस समय एक विद्वान् भिक्षु उनकी ओर आ रहे थे, पर राजा के द्वारपाल के रूप में तैनात तीन सौ राजपुरुषों ने उसे अन्दर जाने नहीं दिया। (इसे राजा ने खुद देखा और] क्रुद्ध—होकर आज्ञा दी कि—उन (भिक्षु) को अन्दर भेजो! जब (भिक्षु) अन्दर आये, तो उनकी जलपान, भोजन आदि से सेवा की।

राजा ने कहा—आपके धर्म और मेरे धर्म इनमें से कौन अच्छा है?
भिक्षु—(दोहा)
बाल देख ले अच्छा है तुम्हारा,
पण्डित देख ले विषमय है।
राजा---विष किसको कहते हैं?

उत्तर में भिक्षु ने त्रिविषों का विस्तृत वर्णन किया। उन विषों से आपका राज भोग (सर्वथा) मिला हुआ है। (परिणाम) दुर्गति में जायगा और वहाँ दुःख भोगना पड़ेगा। जैसे विष मिला हुआ उत्तम खाद्य पेय के सेवन से (अन्त में) प्राण तक छूट जाता है। वह राजा 'गोत्रभू' (अर्थात् मोक्ष मार्ग के गोत्र से युक्त व्यक्ति) थे। जिसके कारण तत्काल उन्होंने उस भिक्षु को अपना गुरु मान लिया और उनसे धर्मोपदेश के लिये प्रार्थना की।

(भिक्षु ने) उसको (राजा को श्रीचक्रसम्बर (के मण्डल) में अभिषेक प्रदान किया और मार्ग दर्शन किया।

राजा ने राज्य अपने पुत्र को सौंप दिया। मूल रूप से राज काज त्यागने में समर्थ हो गये। परन्तु उस आम्रवन की कोयल की मीठी आवाज के प्रति मन आसक्त होकर (गुरु के द्वारा उपदिष्ट) मार्ग की भावना करने में असमर्थ हो गये।

भिक्षु ने (पुनः उन्हें) 'सर्वविकल्प सकृत विमुक्ति' की देशना इस प्रकार दी—

जैसे शून्य आकाश में, मेघ-मेघनाथ एकत्र होते हैं,
उससे वर्षा आती है, जिससे वन-ओषधि फसलें जैसे विकसित होता है।
उसी प्रकार शून्य कान में, कोयल मेघनाद के ध्वनि से,
विज्ञान विकल्प मेघ छाने लगता है, क्लेश विष वर्षा आने से।
राग द्वेष का शाखा पालव (पत्ति) विकसित हो जाता है,
मूढ़ बाल स्वभाव है शून्य चित्त के रस में ही।

शून्य ध्वनि के अभिन्न मेघ ध्वनि से, अनास्रव महासुख मेघ के समान गर्जन करते हैं।

वास्तविक स्वप्रकाश वर्षा से पंच ज्ञान फसल विकसित होता है,
ध्वनि-ज्ञान-अद्भुत है ।।५।।

इस प्रकार देशना देने से उसने भी इसके अनुरूप भावना की, छः मास की अवधि में ही उन्हें सिद्धि लाभ हो गई। उनका नाम भी 'कोकिलपा' प्रसिद्ध हो गया। बहुत से जगत कल्याण (जनकल्याण) के बाद उसी शरीर के द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु कोकिलपा का वृत्तान्त समाप्त

८१. गुरु अनंगपा का वृत्तान्त

गुरु अनंगपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—ये गौड़ देश के रहने वाले थे और जाति के शूद्र थे।

गौड़ (घट्टुर ?) देश के एक शूद्र जाति के व्यक्ति पूर्व जन्मों में शान्ति भावना के कारण अत्यन्त सुन्दर और सुडौल शरीर के थे। और लोगों को देखकर उनमें कुछ अभिमान आ गया। उस समय उसके पास एक सुविनीत बहुत ही सुन्दर आचरण वाले एक भिक्षु आये। उस भिक्षु ने उनसे भिक्षा माँगी, उसने भिक्षु से कहा कि आप अन्दर आयें, मैं आपकी सेवा में एक दिन का पूरे भोजन आदि की व्यवस्था करूँगा। यह कह कर उन्हें अन्दर ले गये। पैर धोना आसन देना आदि सत्कार के बाद उत्तम भोजन कराये।

उस आदमी ने भिक्षु से पूछा—हे आर्य ! आप खाने के लिये भिक्षा और साथ ही इस तरह की तपस्या करते हैं तो यह किसके लिये ?

भिक्षु—मैं संसार में भयभीत होकर मोक्ष पाने के लिये (यह सब) करता हूँ।

शूद्र—हे आर्य ! हम दोनों के (इस देह) आश्रय में क्या और कितना अंतर है ?

भिक्षु—आपका अभिमान युक्त देह आश्रय में कोई गुण प्राप्त नहीं हो पाएगा। मेरे श्रद्धा (से युक्त देह) आश्रय में, अपरमित गुण पा सकते हैं।

शूद्र—आर्य ! गुण से तात्पर्य है यह किस को कहते हैं ?

भिक्षु ने इसके उत्तर में—इस जन्म में धार्मिक व्यक्तियों के ऊपर मनुष्य-अमनुष्य आदि किसी की भी विघ्न बाधा नहीं आ सकती है।

शूद्र—यदि ऐसा हो, तो हमको भी उस तरह के गुणों को पाने के एक उपाय दें।

भिक्षु—तुम (जमीन) खोदना, व्यापार करना आदि कुछ लौकिक काम कर सकते हो ?

शूद्र—ऐसा मैं एक भी नहीं कर पाऊँगा।

भिक्षु—एक ही आसन पर बैठकर भावना कर सकोगे ?

शूद्र—यह तो अवश्य कर पाएँगे।

उस भिक्षु ने उसको चक्रसंवर (के मण्डल में) अभिषेक प्रदान किया और षड्-समुदाय (छः विज्ञान काय) की स्वतः प्रकाशित स्वरूप की दीक्षा इस प्रकार दी—

चिन्मय नाना प्रतीति से, कोई भी भिन्न सत्ता
नहीं हुआ करती है।

छहों निकाय स्वस्थान में ही स्थिर रखो,
निरासक्त अनिरोध उसी रस में स्थिर रखो।

ऐसा कहने पर उन्होंने भी तदनुसार (भावना की, तो छः मास में ही उन्हें परम सिद्धि का लाभ हो गया। उनका नाम भी गुरु अनंगपा प्रसिद्ध हो गया। अनेक जनकल्याण के बाद उसी शरीर के द्वारा वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु अनंगपा का वृत्तान्त समाप्त

८२. गुरु लक्ष्मिकर (लक्षिंकर) का वृत्तान्त

गुरु लक्ष्मिकर का वृत्तान्त इस प्रकार है—यह उज्जैन देश (उग्यन ?) की रहने वाली थीं और जाति क्षत्रिय थी। ये उज्जैन के अन्तर्गत सम्भल देश के राजा इन्द्रभूति जो ढाई लाख (संख्या के) नगर के राजा थे, की बहिन थीं। बचपन से ही वे गोत्र भू गुणों से परिपूर्ण थीं। महासिद्ध कम्बलपा आदि के बहुत धर्म उपदेश भी सुन चुकी थीं। बहुत से तन्त्रों का भी उनको ज्ञान था। उनको लंका के राजा जालन्धर के पुत्र सेवोल (सम्भोत ?) के लिये माँगा, तो उनके भाई इन्द्रभूति ने भी उस राजपुत्र के लिये दे दिया। जब उनको लेने के लिये आये, तो महाराज इन्द्रभूति ने अनेक धर्मविशेषज्ञ लोगों के साथ अपार धन सम्पत्ति देकर भेजा। लङ्कापुरी नगर में पहुँचे, तो मुहूर्त (नक्षत्र) न होने के कारण कुछ दिन उन्हें राजमहल के बाहर रखा गया। उस समय लक्ष्मिकर ने लोगों को देखा, तो सब लो (तैर्थिक) वैधर्मिक होते देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसी समय उस राजकुमार के बहुत से नौकर, जो शिकार खेलने गये थे, बहुत सा माँस लेकर उनके (लक्ष्मिकर के) सामने से लौट रहे थे। उन्हें उन्होंने देखा। लक्ष्मिकर ने (अपनी सहेलियों) पूछा कि—ये सब कौन हैं ? बारात कहाँ से आई ? कहाँ के लोग हैं ? लोगों ने उत्तर दिया—इनको तुम्हारे पति ने शिकार खेलने भेजा है, ये सब शिकारी हैं, और शिकार खेलकर लौट रहे हैं।

जैसे उलटी बीमार को खाने की बात से ही उलटी आने लगती है, उसी प्रकार शिकारियों की चर्चा से उनको बहुत बुरा लगा। मेरे भाई एक धर्मराज थे पर मुझे इस तरह के व्यक्ति को सौंपा, यह सोचकर वह वहीं बेहोश हो गई। उसके बाद जब वह होश में आई, तो उन्होंने (आसपास के) नगर के लोगों को अपना सारा धन सम्पत्ति दान कर दिया। अपने सभी आभूषण एवं वस्त्र नौकरों के साथ भेज दिया। वे स्वयं घर लौट गईं। उसके बाद उन्होंने यह कहकर कि 'दस दिन तक मुझे बुलाने के लिये कोई आदमी नहीं भेजना' एक मकान के अन्दर बैठकर तेल और कोयला मिलाकर शरीर पर लेप लगाया। नग्न होकर बाल बिखेरे हुए बैठीं। वास्तव में वह रहस्यमयी अर्थ की साधना करती रहीं। इससे राजा आदि दुःखी हो गये। दवाई की व्यवस्था की और वैद्य आदि वहाँ जिस कमरे में लक्ष्मिकर रह रही थी, गये, तो उन लोगों को मारना पीटना आरम्भ कर दिया। ससुराल वालों ने उनके भाई (इन्द्रभूति) के पास दूत भेजा कि लक्ष्मिकर की हालत ऐसी हो गई है और क्या किया जाय ? महाराज इन्द्रभूति इससे विचलित नहीं हुए। सोचने लगे कि संसार के प्रति विरक्ति हो गयी होगी।

बहिन लक्ष्मिकर (लक्ष्मीकर) उसके बाद से लंकापुरी में ही सदा परम-रहस्य की साधना में ही लीन रहीं। उच्छिष्ट भोजन खातीं और श्मशान में सोती रहीं। सात वर्ष में ही उन्होंने परमसिद्धि प्राप्त कर ली। उस राजा (उनके श्वसुर) के एक जमादार ने उनकी सेवा की, तो उसको उन्होंने

दीक्षा दी और उसको भी बहुत से गुण प्राप्त (क्षमता) हो गये। वह जमादार ही उनकी लक्ष्मीकर की) स्थिति को जानते थे और कोई नहीं। उसी समय महाराज जालन्धर अपने सैनिकों के साथ शिकार खेलने गये हुए थे। समय के बोध न रहने से राजा बहुत देर तक सो गये। जब वह उठे, तो जल्दी चले। वे सब रास्ता भटक गये (उस दिन वे रात में लौट कर आने में असमर्थ हो गये। कहीं सोने की जगह नहीं मिली। चलते हुए लक्ष्मीकर की गुफा में पहुँचे; अन्दर देखा। देखने में यही आया कि—वे स्वयं अपने शरीर से प्रकाश निकलते हुए देदीप्यमान हो कर बैठी हुई हैं और उनके चारों ओर असंख्य देवकन्याएँ उसकी पूजा कर रही हैं। इस घटना से उनमें बड़ी श्रद्धा आ गई। रात भर वहीं बैठ कर दूसरे दिन अपने घर लौटे, पुनः वहाँ(उस गुफा में)आ कर अभिवादन-प्रणाम आदि किया, तो लक्ष्मीकर ने कहा—

मेरी जैसी स्त्री को तुम प्रणाम क्यों कर रहे हो ?

राजा—आपको अपार गुण प्राप्त हैं, अतः मुझे भी दीक्षा दें, यही प्रार्थना है।

लक्ष्मीकर ने कहा—(दोहा)

संसार के सभी जीव दुःख के साथ ही हैं, सुख कहीं भी नहीं होता है,
वह भी जन्म-जरा मरण आदि से, जगत प्रमुख देव मनुष्य भी पीड़ित हैं।
तीनों दुर्गति तो मात्र दुःख ही है, परस्पर खाते और भूख से सदा पीड़ित रहता है,

शीतोष्ण आदि अपार पीड़ा से (पीड़ित हैं)
अतः हे राजन् आप मोक्ष सुख खोजें।

अन्त में उन्होंने कहा कि—आप मेरे द्वारा विनेय नहीं हैं, आपके जमादारों में से एक, जो मेरा शिष्य था, सिद्धि प्राप्त कर काम कर रहा है, वही तुम्हारा गुरु होगा।

राजा ने कहा—वैसे तो जमादार बहुत हैं, उनमें से मैं उनको कैसे पहचानूँगा ?

लक्ष्मीकर—वह सफाई करने के बाद प्राप्त भोजन अन्य लोगों को देता रहता है, उसी को निमित्त मान कर देखो।

राजा (अपने घर लौट गये) अपने जमादारों (के बीच जाकर उन) को गौर से देखा, तो उनमें से एक वैसा ही कर रहे थे। उसको महल के अन्दर आमन्त्रित करके गद्दी पर आसीन किया और विधिवत् प्रणाम प्रदक्षिणा पूर्वक उनसे दीक्षा के लिये प्रार्थना की।

उस (जमादार योगी) ने राजा के लिये प्रभावसंक्रमण (अधिष्ठान संक्रमण) अभिषेक प्रदान किया और वज्रवाराही के उत्पत्ति एवं सम्पन्न क्रम की दीक्षा दी।

अन्त में लक्ष्मीकर एवं उनके शिष्य जमादार दोनों ने लंकापुरी नगर में अनेक प्रतिहारी दिखाये और दोनों उसी शरीर द्वारा खेचर भूमि चले गये।

गुरु लक्ष्मीकर का वृत्तान्त समाप्त

८३. गुरु समुद्रपा का वृत्तान्त

गुरु समुद्र का वृत्तान्त इस प्रकार है—ये सर्वंडी जनपद के रहने वाले और जाति के सम्भवतः चाण्डाल थे। जवाहरात (रत्न) बेच कर ये जीविका चलाते थे।

सर्वडी नामक जनपद के एक नीच जाति के व्यक्ति समुद्र से रत्न ले आकर बेचा करते थे और इसी से वे अपनी जीविका चलाते थे। एक समय यह (रत्न) न मिलने से उनकी जीविका समाप्त हो गई। इससे दुःखी हो कर वे एक श्मशान में जा बैठे थे। उसी समय अचिन्त योगी उनके पास आये, और उनसे पूछा कि तुम यहाँ क्या करते हो ?

उसी आदमी ने--अपना पूर्व वृत्तान्त सही बतलाया।

योगी—सांसारिक जीव अपरमित दुःख में ही रहते हैं।
तुमने आज से पहले (पूर्वजन्म में) भी बहुत उग्र असह्य एवं अधिक दुःख भोगे हैं। अब भी दुःख के अलावा सुख आदि और कुछ नहीं आने वाले हैं।

व्यक्ति—हे योगी! आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि मुझे इन दुःखों से मुक्त होने के एक उपाय अवश्य दें।

योगी ने उनको अभिषेक प्रदान किया और बाह्याचार अप्रमाण एवं आन्तरिक चार आनन्दों की दीक्षा इस प्रकार दी—

(दोहा)—

मैत्री—करुणा मुदिता और उपेक्षा ये चार अप्रमाण से,
अष्ट लौकिक धर्म में समता स्थापित कर, मध्य से आनन्द स्रोत का अवतारण करो।
चार चक्रों में चारानन्द है, सुख-शून्यता की अभिन्नता आकार,
सम्यक् रूप से भावना करने पर मात्र अनास्रव सुख में ही होगा।
एक क्षण भी दुःख सम्भव नहीं है।

ऐसा कहने पर उन्होंने भी तदनुसार अर्थ अवबोध के साथ भावना की; फलतः तीन वर्ष में उनको परम सिद्धि की प्राप्ति हुई। उनका नाम सर्वत्र 'समुद्रपा' प्रसिद्ध हो गया।

उन्होंने अपने अवदान भी कहे। अनेक जगतार्थ के बाद आठ सौ शिष्य परिवार के साथ वे खेचर भूमि चले गये।

गुरु समुद्रपा का वृत्तान्त समाप्त

८४. गुरु व्यालिपा का वृत्तान्त

गुरु व्यालिपा का वृत्तान्त इस प्रकार है—ये अपत्र देश के रहने वाले थे और जाति के ब्राह्मण थे। सिद्धि-लौकिक रसायन की थी।[१]

अपत्र (उवत्र, स्पेत्र भी) नामक जनपद में एक ब्राह्मण जाति के व्यक्ति बहुत धन-धान्य से समृद्ध थे। वह अमृत साधना में लग गये। बहुत-सा पारा खरीद कर वह सिद्ध किया करते थे और अन्य ओषधियों में उसे मिलाते थे। एक दवाई की जानकारी न रहने से वह (अमृत) सिद्ध नहीं हो पाया। इस तरह निरन्तर तेरह वर्षों तक साधना करने पर भी उन्हें सफलता न मिली। अपनी पूर्व सम्पत्ति भी उसके खर्च में समाप्त हो गई। उसने क्रुद्ध होकर अपनी साधना विधि वाली) पोथी को गंगा में फेंक दिया। स्वयं नगर में भिक्षा मांगने चले गये।

वे क्रमशः राजा राम के मन्दिर जहाँ था (रामेश्वर सम्भवतः) वहीं चले गये। उस समय एक दारिका गंगा में स्नान कर रही थी। वहाँ (पानी से बहती) एक पोथी उनको मिली। उसने उसे उठा कर बाहर निकाला। वह ब्राह्मण भी वहीं पहुँचे। उस पोथी को उसने ब्राह्मण से दिखलाया। ब्राह्मण ने देखा कि यह वही पोथी थी जिसको उसने खुद गंगा में फेंक दिया था। इसे देखकर उसने हँस दिया। दारिका ने कारण पूछा, तो उन्होंने अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाया। दारिका ने कहा—अब भी इसकी साधना करनी चाहिये, मेरे पास बीस सेर से भी अधिक सोना है।

ब्राह्मण ने कहा—पहले भी इसे सिद्ध करने से दशा यह हो गयी, क्या अब कुछ होगा ? दारिका ने ब्राह्मण को इस काम के लिये विवश किया, बहुत-सा पारा खरीद कर वे एक वर्ष साधना (अमृत साधना) करते रहे। 'रक्त अम्ल' नामक ओषधि के न जानने से फिर वही असफलता ही हो रही थी। एक दिन दारिका स्नान कर रही थी, प्रकृति पुष्प जो उसकी उँगली पर लगे थे, उन्हें गिराये, तो कुछ कण-उछल कर उस रसायन ओषधि के पात्र में जा गिरे। तत्काल रसायन ओषधि सिद्ध होने के लक्षण दिखलाई पड़ने लगे। ब्राह्मण ने (दारिका) से यह कह कर कि तुमने इस रसायन पात्र में क्या डाल दिया, पूछा, तो उसने उत्तर दिया कि—यह कुछ कण (प्राकृतिक पुष्प के कण) हैं, यही होगा अन्य मैंने कुछ नहीं गिराये। इससे दोनों प्रसन्न हुए।

---

१ व्यालिपा के रसायन विशेषज्ञ होने का वृत्तान्त अन्यत्र भी बहुत जगह मिलता है, वह रसायन शास्त्र के भी विशेषज्ञ थे—

गोविन्द भगवत्पादार्चो गोविन्द नायकः,
चर्वटिः कपिलो व्यालिः कपालिः कन्दलायनः।
एतेऽन्ये बहव सिद्धा जीवन्मुक्ताचरन्ति हि।
तनु रसमयीं प्राप्य तदात्मक कांचणाः॥

(श्लोक—८,९, अध्याय ९, सर्वदर्शन संग्रह माधवाचार्य कृत)

उस दारिका ने [उस साधक] ब्राह्मण के भोजन में तीता (ओषधि विशेष जिसका रस बहुत तीता होता है) लगा कर दिया, तो रोज उनको (ब्राह्मण को) उसके तीतापन का अनुभव नहीं होता था। उस दिन (भोजन में तीता पड़ा हुआ, यह) उनको ज्ञात हो गया। दारिका ने उनसे पूछा कि—क्या सिद्ध हो गया है?

ब्राह्मण—क्यों क्या कारण है, (आपके पूछने का)

दारिका—पहले भोजन में तीता लगने पर आपको उसकी तीतापन ज्ञात नहीं होता था, पर आज होने लगा है।

ब्राह्मण—हाँ, सिद्ध हो गया है, इसका लक्षण (रसायन ओषधि स्वंतः) दक्षिणतः चक्र काटना और उसमें कष्ट मंगल चिह्न परिलक्षित होना आदि होता है।[1] यही इसमें दिखलाई पड़ रहे हैं। दारिका ने (उस रसायन सिद्धि के उपलक्ष में) बहुत बड़ा मङ्गल उत्सव का आयोजन किया। और उस रसायन द्रव्य को स्वयं ब्राह्मण दारिका और उनकी एक सेविका ये तीन ने खाये। तीनों को 'आयु की अमरत्व सिद्धि का लाभ हो गया।

ज्ञान के प्रति कंजूसी एवं पर इर्ष्या की मात्रा अधिक होने से उसने अपने उक्त विधि को किसी को नहीं बताये। यह कोई न जाने, इस उद्देश्य से वे (तीनों) देव लोक चले गये। पर वहाँ किसी भी देवता ने उसका सेवन (उपासना और दीक्षा ग्रहण) नहीं किया, तो वे वहाँ से वापस (मर्त्य लोक) आये और महाराज क्लिम्बर[2] के राज्य में चले गये। वहाँ एक विशेष स्थान पर रहने लगे। वह एक विशाल चट्टान, जिसकी ऊँचाई आठ योजन है, चौड़ाई में दस कोस है, उसके क्षेत्र के चारों ओर पंक (कीचड़) से घेरा हुआ है। उस चट्टान के मध्य में एक वृक्ष था, उसी की छाया में वे लोग रहने लगे।

इस प्रकार उस रसायन विधि की दीक्षा परम्परा विच्छिन्न हो गयी और (जम्बूद्वीप में इसकी परम्परा न रही)।

बाद में आचार्य नागार्जुन ने 'खेचर' (आकाश गमन) की सिद्धि प्राप्त करके एक विशेष उपानह (जूता) की सहायता से वहाँ पहुंचे। जाते समय एक उपानह वहाँ

---

१ रसायन का जब पूर्णरूप से सिद्ध होने लगता है, उस समय उस द्रव्य में विशेष प्रकार के लक्षण परिलक्षित होने लगता है। वह स्वयं उबलने लगता है और उबलते समय दक्षिण की ओर चक्र काटते हुए घूमता है, उसमें भी श्रीवत्स आदि का आकार उभरता है। रसायन की सिद्धि तीन तरह से होती है। पुण्य आदि संभार पूर्ण होने से-जैसे सिद्धार्थ बुद्धत्त्व प्राप्त करने ही वाले थे, उनके पेय क्षीर में उक्त लक्षण दिखलाई पड़ा था। दूसरा मन्त्र शक्ति से सिद्ध शृङ्गीपा ने अपने मूत्र डालकर बहुत से पानी रसायन द्रव्य बना डाले। तीसरा विभिन्न द्रव्यों के योग से आचार्य नागार्जुन ने बनाया (नागार्जुन रसायन शास्त्र, स्तनग्यूर संग्रह)।

२ कोलम्बर, कलम्बर, कुलम्बर।

पहुँचने से पहले कहीं छिपा दिया और एक लेकर वहाँ पहुँचे। प्रणामपूर्वक हँस (ब्राह्मण) से दीक्षा के लिये प्रार्थना की। उस (ब्राह्मण) ने पूछा कि—तुम यहाँ कैसे आये हो ?

नागार्जुन ने कहा—इस उपानह (जूता) की सहायता से आया हूँ।

उस ब्राह्मण ने--उन्हें अपने ज्ञान एवं [उस रसायन] विधि की दीक्षा दी। अन्त में उसने कहा कि दीक्षा को दक्षिणा के रूप तुम अपने उस उपानह जिसकी सहायता से तुम यहाँ आये हो, उसको मुझे दे दो। नागार्जुन ने उस उपानह को उन्हें अर्पित कर दिया। उन्होंने एक उपानह जो अपने पास रखा, उसको पहन कर उसकी सहायता से वहाँ से जम्बूद्वीप लौट आये। (दक्षिण) श्रीपर्वत में रह कर उसी की साधना की और उस विधि को जगत कल्याणार्थ सबके लिये सुलभ कर दिया।

यह कहा जाता है कि मात्सर्य आदि क्लेश से युक्त लोगों से गुण (ज्ञान) प्राप्त करना बहुत कठिन है। साथ ही सम्यक् गुण की प्राप्ति गुरु के उपदेश के बिना सम्भव नहीं है। अतः गुरु का उपदेश [सबके लिये] अत्यावश्यक हो जाता है।

गुरु व्यालिपा का वृत्तान्त समाप्त